

भर्तृहरिस्त

शतकत्रयम्

(नीति, शृंगार एव चैवाम्यशतक भाषानुवाच सहित)

अनुवादक

भीकांत शारे

पुस्तिका लेखक

कमलेश्वरस त्रिपाठी

संपादक

धीरूष्ण बास



प्रकाशक

मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड,

इलाहाबाद ।

मूल्य

तीन रुपये

मुद्रक :

श्री श्रीरेणुनाथ घोष

भावा प्रेस प्राइवेट लिमिटेड

इलाहाबाद ।

निवेदन

महर्हरिदत्त 'दशकप्रथम' संस्कृत साहित्य का अनमोल रत्न है। विचारों की उदात्तता शैली की सरलता पदों के साहित्य और रचना के कौशल के कारण वह भारतीय व्यंग्य-कथन के अनमोल मणियों जैसा पिछले बार्हस्पत्य से बर्षों से जगमग करता रहा है। ददीयमान हाता रहा है। नीति, शृंगार और वराम्य में सम्मिश्रित में एनोके भारतीय समाज के मन-मन को सदियों से अनुप्राणित और उत्प्रेरित करते रहे हैं। इनको इतनी लोकप्रियता प्राप्त हुई कि अन्य साहित्यकारों एवं मनीषियों ने दशकप्रथम की मुक्तक परम्परा को विचार के अन्य क्षेत्रों में भी प्रयुक्त किया और अपने साहित्य को अधिकाधिक मात्रा में सुपमा-सम्पन्न किया। संस्कृत के अतिरिक्त अन्य भाषाओं में भी इस परम्परा का पालन किया गया और मुक्तक काव्य की उत्कृष्ट रचनाएँ हुईं। हिन्दी में भी अनेक यशस्वी सुकृतिमान कवियों ने इस मुक्तक परम्परा का अनुगमन किया और नीति एवं शृंगार के उत्कृष्टतम दोहों की रचना की। इस प्रकार मुक्तक काव्य की परम्परा भारतीय साहित्य में अबाध गति से चलती चली आई है।

दशकप्रथम में नीति के १११ एनोके शृंगार के १०० एनोके और वराम्य के ११३ एनोके सम्मिश्रित हैं। इस प्रकार मू. क्रम ३२४ एनोके का संग्रह है। यद्यपि इनमें से कुछ एनोकों में सम्बन्ध में यह धारणा भी है कि वे प्रकृत हैं परन्तु परम्परा से वे महर्हरिदत्त ही माने जाते हैं और हमने उन्हें इसी रूप में स्पष्ट अनुसन्धान में सम्मिश्रित किया है। इसी प्रकार शृंगार वचनम् के १५ वें एनोके में, उद्धृत के स्थान पर हमने यद्धृत और पच्छिरेव के स्थान पर पच्छिरेव ३६ वें एनोके में परिमन प्राग्गार के स्थान पर परिमना प्राग्गार को स्वीकार कर लिया है। ७२वें

दशोक में 'सृष्टाति' के स्थान पर 'माषति' और 'विद्वानपि' के स्थान पर 'आनसपि' ७२ वें दशोक में 'कृतिघर' के स्थान पर 'कृतिघर' ही रहने दिया है। वैराग्यसतकम् के ५५ वें दशोक में 'मुग्धम्' के स्थान पर 'मुग्धम्' ७२ वें दशोक में 'परमधनीयम्' के स्थान पर 'परमार्थनीयम्' को ही प्राश्य समझ है। पद्यों के चुनाव के सम्बन्ध में भर्तृहरि अत्यन्त सजग रहे हैं। अतः उनके दशकों में शब्दों के हेरफेर की गुञ्जायदा बहुत कम रही है।

भर्तृहरिप्रकृत 'शतकत्रयम्' को प्रकाशित करते समय हमें विशेष आनन्द हो रहा है। शतकत्रयम् तीन भागों में विभाजित है—मीतिरसक शृ गारसतक और वैराग्यसतक। इन शतकों का प्रत्येक दशोक अत्यन्त मसित मधुर और उत्कृष्ट है। साथ ही ये सारे के सारे दशोक विचारों सेजक भी हैं। भर्तृपि भर्तृ हरि को जीवन के प्रत्येक पल का अनुभव प्राप्त था। वह अत्यन्त गम्भीर विचारक थे। भारतीय बौद्धिक एवं अध्यात्मिक साहित्य का उन्होंने अच्छी तरह मंथन किया था। सत्य' और 'शिव' और 'सुन्दर' के वह अनन्य उपासक थे। उनकी दृष्टि निर्मल थी। वह मंत्रद्रष्टा थे। इसलिए चाहे मीति हो अथवा शृ गार हो या वैराग्य हो वह जो कृष्ट कहते हैं वह अन्तिम और परमसत्य के रूप में हमारे सामने उद्भासित होता है। इसीलिए शतकत्रयम् की व्याप्ति देश की सीमाओं के बाहर भी पहुँची और सर्वत्र बिद्वग्मंडली में भर्तृ हरि के शतक समादृत हुए। शतकत्रयम् का प्रस्तुत संस्करण मसित भाषानुवाद के कारण और भी अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया है। यद्यपि 'शतकत्रयम्' के अनेक संस्करण प्राप्त हैं फिर भी इस संस्करण को प्रकाशित करने का प्रयोजन केवल यही है कि शतकत्रयम् अधिवापिक सत्या में सभी पाठकों के पास पहुँचें और इससे वे सामान्वित हों। य य और य यार के सम्बन्ध में जो अनु शीलनपूर्ण मरा भूमिका स्वरूप ओढ़ दिया गया है उससे इस संस्करण की उपयोगिता अत्यधिक बढ़ गई है। अतः है विज्ञ पात्रक इस संस्करण को अपने स्नह-श्रोत्र में प्रथम देने।

—भीष्मराज रास

रक्षिता और बाध्यकारीकार एक ही है। किन्तु किन्हीं का रचनाओं प्रपञ्च तीर्ता के देखे का आधार इन्सिग का उपयुक्त उल्लेख है। इस तरह 'रक्षिता' का रक्षिता बाध्यकारीकार ही है, इसका आधार निरूपण ही ठोस नहीं है। अतः इस सम्बन्ध में कोई निष्कर्षपूर्ण प्रमाण साध्य नहीं हो सकता।

एक बात विचार की है कि भट्टि के कवनानुसार उनके महाशायर की रचना किसी बलाभी तरेय स्वीकरण के उद्योग में हुई। इस नाम के बार पञ्च बलमी संकत् १५३ से २३० के बीच हुए।

स्वीयरसेन नामक बंतिव रक्षा की मृत्यु ६४१ ई० में हुई। स्वीयरसेन द्वितीय (६१० ई०) के विभागेव में भट्टि नामक किसी विद्वान् को भूमि देने का उल्लेख है। आसह भट्टि से परिचित थे अतः इनका काम भट्टि का समय माना जा सकता है। इन्सिग के अनुसार मनु हरि की मृत्यु ६२१ ई० के लगभग हुई। अतः इन दोनों के समय में कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं है।

अनुभूति मनु हरि को किसी 'बिग्रम' से भी जोड़ती है। अत्युक्त समय के साम्राज्य-१४४ ई० में यहाँ को बन्दर की सड़क में पराजित करने वाले अजयिनी के हर्ष बिग्रमादित्य की स्थिति का पता हमें है। यदि उल्लेख अनुभूति मान भी जाय तो मनु हरि को बिग्रम से सम्बन्धित करने वाले यही बिग्रमादित्य सामने रह जाते हैं।

यहाँ की अपनी भूमिका में तैलंग महोदय मनु हरि को ईमवीय प्रथम-द्वितीय चक्र में रखते हैं।

इन विभिन्न मतमतामर्तों में निर्णय की स्थिति इहं प्रमाण के अभाव में प्राप्त नहीं है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अतःअतः के रक्षिता मनु हरि तातरीं यती के बाद के समय में नहीं हो सकते। बीच का यह निष्कर्ष भी तर्क-संगत प्रतीत होता है कि अनुभूति से कोई ऐसा ऐतिहासिक सम्बन्ध नहीं निकला जो मनु हरि के बिग्रमादित्य से सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक हो। उनही भट्टि में एवता की बात भी तर्कसंगत नहीं। अतः अतःअतः के रक्षिता और अवाक्य मनु हरि के एक होने की बात ही कुछ आधारयुक्त रह जाती है।

मनु हरि को योभी के राज में स्वीकारने की प्रवृत्ति हमारे लोक-नादित्य में

दसोक में 'सृष्टि' के स्थान पर 'माप्ति' और 'विद्वानपि' के स्थान पर 'जानन्नपि' ७२ वें दसोक में 'कृतिधर' के स्थान पर 'कृतिवर' ही रहने दिए हैं। वराम्यशतकम् के ५३ वें दसोक में 'मुग्धम्' के स्थान पर 'मुग्धम्' ७३ वें दसोक में 'परमार्थनीयम्' के स्थान पर 'परमार्थनीयम्' को ही प्राण समझ है। पाठों के सुमाय के सम्बन्ध में भर्तृहरि अत्यन्त सजग रहे हैं। अतः उनके दसोकों में शब्दों के हेरफेर की गुजायत बहुत कम रही है।

भर्तृहरिकृत शतकत्रयम् को प्रकाशित करते समय हमें विशेष आनन्द हो रहा है। शतकत्रयम् तीन भागों में विभाजित है—नीतिरसक शृ गाररसक और वराम्यशतक। इन शतकों का प्रत्येक दसोक अत्यन्त समित भयुर और उत्कृष्ट है। साथ ही ये सारे के सारे दसोक विचारोत्प्रेषक भी हैं। भर्तृपि भर्तृ हरि को जीवन के प्रत्येक पक्ष का अनुभव प्राप्त था। वह अत्यन्त गम्भीर विचारक थे। भारतीय सौमिक एवं अध्यात्मिक साहित्य का उन्होंने धरती तरह मंचन किया था। सत्य और शिव और सुन्दर के वह अनन्य उपासक थे। उनकी दृष्टि निर्मल थी। वह मंत्रद्रष्टा थे। इसलिए चाहे नीति हो अथवा शृ गार हो या वराम्य हो वह जो कुछ कहते हैं वह अन्तिम और परमसत्य के रूप में हमारे सामने उद्भासित होता है। इसीलिए 'शतकत्रयम्' की ख्याति देश की सीमाओं के बाहर भी पहुँची और अनेक विद्वान्मंडली में भर्तृ हरि के शतक समादृत हुए। शतकत्रयम् का प्रस्तुत संस्करण समित भाषानुवाद के कारण और भी अधिक महत्वपूर्ण हो गया है। यद्यपि 'शतकत्रयम्' के अनेक संस्करण प्राप्त हैं फिर भी इस संस्करण को प्रकाशित करने का प्रयोजन कमजोर नहीं है कि 'शतकत्रयम्' अधिकाधिक संख्या में सभी पाठकों के पास पहुँचे और इससे बसामाश्रित हों। प्रथम और प्रथम के सम्बन्ध में जो अमु शीतम्पूर्ण अथ भूमिका स्वरूप जोड़ दिया गया है उससे इस संस्करण की उपयोगिता अत्यधिक बढ़ गई है। आशा है कि पाठक इस संस्करण को अपने स्नेह-त्रेड में प्रथम देते।

रक्षिता और बाध्यकारीकार एक ही है। किन्तु बिन्हीं से रचनाओं अपना तीनों क एम्ब का आधार इ-स्तिंग का उद्युक्त उत्पन्न है। इस तरह 'उपलम्ब' का रक्षिता बाध्यकारीकार ही है, इसका आधार निरूपण ही ठाठ नहीं है। परन्तु इस सम्बन्ध में कोई निरूपणपूर्ण प्रमाण साम्य नहीं हो सकता।

एक बात विचार ली है कि मट्टि के कथनानुसार उनक महाकाव्य की रचना किसी बचमी मरेण कीपरसेन के राज्यकाल में हुई। इस नाम क चार राजा बचमी संवत् १८३ से ३३० क बीच हुए।

कीपरसेन नामक अंतिम राजा की मृत्यु ६४१ ई० में हुई। कीपरसेन द्वितीय (६१० ई०) क विनासेन में मट्टि नामक किसी विद्वान् को मूमि देने का उल्लेख है। मान्य मट्टि से परिचित थे परन्तु इतना काल मट्टि का समय माना जा सकता है। इ-स्तिंग के अनुसार मनु हरि की मृत्यु ६११ ई० के लगभग हुई। परन्तु इन बातों के समय में कोई बहुत बड़ा अंतर नहीं है।

धनुषुति मनु हरि को किसी 'विष्म' से भी जोड़ती है। उद्युक्त समय के आसपास १४४ ई० में राजों को बकर की सड़ाई में पराजित करने वाले उज्जयिनी के हुए विष्मनादिय की स्थिति का पता हमें है। यदि उद्युक्त धनुषुति मान ली जाय तो मनु हरि को विष्म से सम्बन्धित करने काय नहीं विष्मनादिय सामने रह जाते हैं।

राजकों की अपनी सुमिया में तेमय महोदय धनु हरि को इसीय प्रथम-द्वितीय शतक में रचन है।

इन विविध मतमतान्तरों में निर्णय की स्थिति हड़ प्रस्ताव क अनाथ में प्राय नहीं है। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि शतशतक के रक्षिता मनु हरि राज्यों राजा के बाद के कथनानुसार नहीं हो सकते। बीच का यह निरूपण भी उद्युक्त-प्रतीत होता है कि धनुषुति में कोई ऐसा ऐतिहासिक उल्लेख नहीं मिलता जो मनु हरि क विष्मनादिय से संबंध स्थापित करने में सहायक हो। उनकी मट्टि से एका की बात भी उद्युक्त नहीं। अन्ततः शतकनय के रक्षिता और बेदाहरण मनु हरि क उद्युक्त होने की बात ही कुछ प्रापाद्युक्त रह जाती है।

मनु हरि को योपी के रूप में स्वीकारने की प्रवृत्ति हमारे काल-शास्त्र में पायी जाती है। इस विचार का मत सम्भवतः हरिहर रचित 'मनु-हरि-विन्द' है।

नाटक है। इस नाटक में योग की महिमा का प्रतिपादन है। इसमें खुम भीति घटीर से भात्मा को पूबह करने का तथा संसार मे बिराम का संरेष दिया ग है। इस नाटक क मुख्य पात्र प्रसिद्ध मोपी बोरसाताच भबबा बोरसनाथ। जिन्होंने पन्द्रहवां शती के धारंभ में कनफटा भोगियों के संग्रहण की स्थापना की एवं शिव का भवतार माता गया। इनका मन्दिर धात्र भी बोरसतुर (बलरप्रदेश) म है।

भगु हरि अपनी पत्नी की मृत्यु की घस्य पूबता गुनकर धात्रुस हो उठे। ए धारी मे उन्हें साखलना की धीर उठ्ठोने ऐसो शक्ति प्राप्त की कि उठ्ठोने बन्धुट मृत अपनी पत्नी की जीवित कर लिया। किन्तु उनका संसार से मोह छू गया।

भगु हरि का ब्यक्तित्व जितना एतुस्वपूर्व धीर एतिहासिक दृष्टि से उभय हुआ है, उतनी ही के संख्य में भी उतना ही उलझाव है। मात्र उनस्य ही पाठकों में कितने ही ऐसे स्तोत्र हैं या ध्य कविओं की रचनाएँ हैं। इस संख्य 'सुभाषिताशमी' नामक प्राचीन गुभायित-सदह के सम्पादक पा० धार्सन की सूचन महत्त्वपूर्ण है— 'तेमंभ के संस्करण में मोहितपत्रक में दिय गये ११ स्तोत्रों में ८ स्तोत्र हमारे पुस्तक म भगु हरि क नाम मे ब्यक्तक में संबद्ध हैं ६२ नामो उग्रण क बिना दिय गये हैं तथा ११ ब्यक्त कर ते दूगरे सेपरी से संबद्ध हैं तेमंभ के संस्करण में दिये गये 'बराधयत्रक' के १११ स्तोत्रों में ११ हमारे पुस्तक में ब्यक्तक स भगु हरि में संबद्ध हैं ११ नामाग्रण के बिना दिये गये हैं तप ३ ब्यक्तक से दूगर सेपरी से संबद्ध हैं। बौद्धमेत क संस्करण में 'बेराधयत्रक' में दिये गये १०० स्तोत्रों म से कषण १ भगु हरि के नाम से है १० बिना नामाग्रण के हैं धीर ८ ब्यक्तक से ध्य सेपरी क नाम से है।' इस संख्य म ए० बी० बीष का मत है कि 'मोहितपत्रक' धीर 'बराधयत्रक' म भगु हरि की दयना रचनाओं के साथ ही दूगरे रचनागाण की रचनाओं के संगत की संभा का धारण है। हाँ 'गुंवालात्रक' की बात दूसरी है— 'क्योंकि उभय एक निश्चय हीका है या सचमुच एक गुणस संबद्धता का भाव हो सकता है किन्तु जो ब्यक्ति बराधयत्रक रूप मे सुशमासीस मन्त्रिक का इतिाव होने का उचित करता है।

मनु हरि जाहे बर हूए, ऊहोने अपनी छतकों में जाहे संकलन किया हो या छारे स्तोत्र उनकी ही रचनाएँ हों किन्तु इसका निश्चित है कि उनकी छतकों में प्राप्त स्तोत्र संस्कृत के मुक्तकों में अपनी विशिष्ट स्थान रखत हैं। उनकी नीति शृंगार तथा वैचर्य छतकों में मुक्तकों का बहिष्कार से पूर्ण रूप दृष्टिगोचर होता है। बरभ्य में नीति शृंगार तथा वैचर्य का विषय बस्तु स्वीकार करते ही प्रवृत्ति मनु हरि से पूर्वतम ही है। संस्कृत काव्य के लिए महाभारत की नीतिपरक उत्तिमा बड़ी जानी-बहुजानी है। बौद्ध शास्त्रों में मायाओं का आचार लेकर कहानियों के माध्यम से नीति के तरब उजागर किये गये। पंचतन और हितोपदेश की जन्तु-कथाएँ नीति का ज्ञान करने के लिये ही रची गयीं। बड़े ही सुप्रसन्न में जीवन की नीति और आचार का बोध करने के लिये संस्कृत के कवियों ने कविता का माध्यम स्वीकार कर लिया। ऐसी रचनाओं में प्रायः बड़ी प्रौढ़ कविता के साथ नीतिपरक भावों की अभिव्यक्ति है। मकरानन्द का कहना है— 'संस्कृत साहित्य के विभिन्न अंशों में अत्यन्त नीतिवाक्य बिखरे हैं जिनमें अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण एवं उच्चतम नीतिक और बात करने वाले विचार बहुधा अत्यन्त परिष्कृत और अभ्यात्मक रूप में बिलार्ई पड़ते हैं। स्मृतियों में ये मरे पड़े हैं। महाकाव्यों और नाटकों में ये बहुधा नायकों देवताओं और श्रवियों के आँसु पर आ जाते हैं। इसके अतिरिक्त संस्कृत काव्यों की एक स्वतंत्र विधा के रूप में नीतिपरक धार्मिक और शृंगारपरक मुक्तकों का विकास हुआ। अस्वकीय तथा मानुषेय के स्तोत्र, तथा वाग्विद्या के 'शतु संहार' और अद्वैतवाक्य में प्रवृत्ति का स्पष्ट अर्थ इस प्रकार काव्य के अन्तर्गत ही सुनिश्चित है। इससे पूर्व के पालिनि तथा बरचि के नाम से प्रसिद्ध स्तोत्र प्राप्त होते हैं, जिनमें मनु हरि द्वारा रचित मुक्तकों की सुनिश्चित मिलती है। अद्वैतवाक्य के व्याख्याकार जिनसाधु ने महाकवियों की रचनाओं में भी 'अपराधगत के दर्शन पर टिप्पणी करने हुए इस प्रथम में पालिनि का एक स्तोत्र उद्धृत किया है—

गतेऽधरात्रे परिमन्त्रयन्त्र गर्त्रन्ति यन् प्राप्सुवि कालमेघतः ।
 अयन्मती वातमिधेमुदिम्बं तदध्वरी नीतिव हुन्दुरीति ॥

पापी रात पीत जाने पर बरमान में जो जाने भारत बरत करते हैं मरणा है अन्त के समय का न देना कर के इच्छते हैं किने पाप ध्यान बछड़े के लिये रख रखी हो ।

'ध्वन्यामोक' में बिना नाम से उद्धृत यह श्लोक दांड वरपरिचय में पाण्डित के नाम से उद्धृत है—

अबीशरायेण बिलोपतारकम्,
तथा गृहीतं अमिता निशामुखम् ।
यथा सभस्त मिमिरांशुकं तथा
कुतैऽपि रागात् मन्तितं न लभितम् ।

रागभरे (अण्ड-अनुपबन्धु) अंशुत तारक (अंशुत पुत्रमित्रों बाने-अन्यत्रे लायवण से भरे), निशा के मुख (भारत-आत्म) का अण्ड अण्ड ने यों किया कि वह रागभरा अपने विरले विमिरांशुक (अण्डभर की अराधय-नीमांशुक) को भी न जान पायी ।

वहीं पर पाण्डित के नाम से एक दूसरा श्लोक भी है—

रापः क्षामीहृत्य प्रसन्नमपहृत्याम्बु सरितां
प्रताप्योर्षो हृत्स्नां तस्यहनमुच्छोष्य सकलम् ।
अथ संश्लेषुच्छांशुगत इति समालोक्यपर-
स्तद्विहीयानोद्य विधिं विधिं करभौह अलदा ॥

रापों को मुक्त कर, सपिताओं से बनाने अथ अण्डरण कर, रापि यस्ती को तथा कर, छोटे अण्डहन बन को मुला कर अथ नुर्य मया कहीं ? इस भावना से बिजनीकरी शीपक के प्रभाव से अने बूझने हुए बाहल अथ बिधा दिया में बिचरण कर रहे हैं ।

तदुक्ति अर्थात् न पाण्डित के नाम से एकां उद्धृत है—

असौ विरे अतितन्यरररर-
वारावता मग्यवचादुवका ।
अर्थात्ताङ्गी मयुराणि हृत्तम्
अबीशते वशापुटेन काम्याम् ॥

पर्वत की शीतल अन्धय से मियन, कामावता में अण्डार में अण्डय अण्ड अण्डय-अण्डयों वजोटी कर पस से हुआ अण्ड रहा है ।

पाणिनि के इन श्लोकों की परम्परा में प्रसिद्ध ब्रह्मगोविन्द ने भी कुछ श्लोकों की रचना की। 'सुनापिशावती' में उनके श्लोक उद्धृत हैं—

विषयस्य च विषयाणां दूरमत्यस्तनन्तरम् ।

उपमुक्तं विषयं हस्ति विषयाः स्मरणादपि ॥

विषय और विषय में अन्तर दूरो नहीं है—विषय खा लेने पर हनन करता है, विषय तो स्मरणमात्र से ही।

केचिद्भवेन हि भवन्ति विनीतभाव

मध्ये जनाः विभवतोमहत्प्रयत्नाः ।

केचिच्छय साधुजनसंसंहि कीर्तितोभात्,

सद्भाववाजगति कोऽपि न साधुरस्ति ॥

कोई भय से विनीत रहता है दूसरे लोग धन के लोभ से प्रयत्न करते हैं, कुछ उद्यमों के बीच प्रसन्नता के लोभ से, लेकिन कोई भी सद्भावों से मुक्त होकर इस संसार में उद्यम नहीं होता।

ब्रह्मगोविन्द का समय लगभग पाँचवीं शताब्दी ईश्वरोप है।

लगभग पाँचवीं शताब्दी के सुन्दर पाण्ड्य की भार्या रचनाएँ भी इसी भाँति प्रशंसित रही हैं। इसका साथ प्रायः वे मुक्तकों की परम्परा चल ही रही थी। हाल हाल तकसिंह 'शास्त्र सत्सर्ग' में यह बात सुरक्षित है।

इन साथ धूमिकाओं में मनु हरि की 'उत्तरकर्म' की उपसर्गि बड़ी महत्वपूर्ण है। मनु हरि ने पहली बार नीति शृंगार और वैराग्य के विषय का विभाजन कर असम-प्रसन्न शब्दों की रचना की। उनके श्लोकों में भाषा की अद्भुत सरलता के साथ जीवन के साक्षरीय अनुभवों को बहिष्कार का ज्ञाना पहनाया गया है। उनकी नीतिशक्ति जीवन के सन्तो का बाध्यत्व में प्रस्तुत करने में अत्यन्त सफल रही है। यदि में जीवन की यथायथा के इच्छा के प्रसन्न म शृंगार के महत्वपूर्ण स्वाम को पहचानने में भूल नहीं की। रमाणी के मदराएँ धारण कर और प्रकृति की मोहनी छटा का उद्दीपन उसके निये बन्ध विषय बना। कामिनी के अर्पण, नवन उद्यम, उक्त मने कुछ उन धारणक सये। उद्गों धनुषों का रुत उये मनोहायी सया। पर मनु हरि के मन में एक प्रसन्न बिह्व सना रहा।

सैव्या निहम्या किमु मुबराला-
मुतस्मरस्मेरबितासिनोगाम् ?

कवि को प्रश्न का उत्तर मिला। उसे इस सत्कार से विरग में ही जीवन व सार्थकता का भान हुआ। दिव्यतादि से अनभिज्ञ प्रकृत घोर विद्याभूमि स्वानुभूत्येकार 'सिब' के कारण में उग चान्ति का निवास लगा। उनकी कर्म की कि गंगा के पवित्र तट पर एकप्रक में केवल शिव का स्मरण किया जाय।

भगु हरि के बसोत्रों में शक्ति के सीमेयन में ही कला का जन्म परिष्क विचार पड़ता है। एतदृष्टि को दृष्टि से उनके मुक्तक प्रत्यन्त सार्थक हैं। यों ही संस्तुत मुक्तकों के इतिहास में—महाकाव्य व मित्र रूप में—सदा एतदृष्टि में समा घोर कलात्मक दृष्टि से ऊँचे तथा पूर्ण इतिहास का समाव नहीं रहा है किन्तु भगु ही की प्रतिभा से तो परिष्क के तीक्ष्णरूप आलोचक भा अभिभूत हो गये। उनका प्रतिभा कुछ ऐसी ही सरल है। उनकी शक्ति की शोच कुछ ऐसी ही मार्मिक है।

परन्तु 'घटकवचनम्' केवल बेराम्य का ही स्तब्ध दृष्टा हा ऐसी बात नहीं नीति के तमोको में भगु हरि के जीवन के कठोर कोमल अनुभवों का निचो प्रत्यन्त ललित चर्चों में प्रत्यन्त सरल घोर बोटीसे ढँप से एत दिया है। शका घटक में जन्म श्रुमार है, दूब मांसल प्रत्यन्त प्रभावशाली एव मनोमाहक घोर, बेराम्यमयक म कवि एक शरानिध घोर दृष्टा के रूप में सामने आता है। जीवन के लघुर-निस्त अनुभवों का प्रसिन्न करने के बाव बह देयता है कि यह सब कुछ नहीं है, विद्या है, मृतक है, व्यर्थ का मोह है। तब मनुष्य क्या करे ? उनसे मुक्ति किसे है ? उसे स्वभावतः सत्कार से विरक्ति हाडी है, विगुणा होती है। उसका सार ध्यान करने प्राणम्य देव के चरणों में लज आता है—यह जो बनादि है, प्रकृत है, रिजा घोर कान से भा मुक्त है जो मयमय है, शिव है।

नीतिशतकम्

श्री गणेशाय नमः

दिव्यशालाघनवशिष्टानन्तचिन्मायमूतय ॥

स्वानुभूत्येवमागय नमः शान्ताय तेजसे ॥१॥

देव-काल स अपरिमीमित सन्तु ज्ञानस्वल्प्य अननी (मानरिष)
अनुभूति स ही शायगम्य शान्त तथा नजस्य (ब्रह्म) का प्रणाम है ॥१॥

या चिन्तयामि सतत मयि सा विरक्ता

साप्यन्यमिच्छति जन स जनाज्यन्तक ॥

अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या

धिकां च त च मदन च इमां च मां च ॥२॥

जिम श्री को मैं निरन्तर कामना करता हूँ वह मुझे विमुक्त हो
कर दूसरे मनुष्य का चाहती है और वह मनुष्य (जिसे मेरी प्रयत्नी
चाहती है) दूसरी छोड़ स अनुत्पन्न करता है, और मेर लिए कोई दूसरी
(गो) मंजोर किए बंटी है (अर्थात् मुझ पर आसक्त है)। (अतएव) उस
श्री का जिसे मैं चाहता हूँ उस पुण्य का (जिम मरी प्रेयसी चाहती है)
उस मारी का (जिम पर उक्त पुण्य आसक्त है) और मुझे नो तथा (उन)
कामदेव का मो (जो हम प्रेम-द्वन्द्व व मूष में है) विरहार्त है ॥२॥

अन मुक्तामाराध्य मुक्तरमाराध्यत विनोपन ॥

ज्ञानसवदुर्विदग्ध ब्रह्मापि च त मर न रजयति ॥३॥

मूर्ख व्यक्ति को सुख से सिद्ध किया जा सकता विद्वान पुख्य को और अधिक सुख से बस में किया जा सकता है । (परन्तु) दम्भी, स्वल्प ज्ञानवाले व्यक्ति को छो प्रह्ला भी धमीसूत नहीं कर सकता ॥३॥

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्रदण्डांकुरा-
त्समुद्रमपि संतरेत्प्रचलद्रूमिमासाकुलम् ॥
भुजङ्गमपि योपित शिरसि पुण्यधदारधे
न तु प्रतिनिविष्टमूलजनचित्तमाराधयेत् ॥४॥

मगरमच्छ की वक्र दाढ़ों के बीच से (भी) बस का प्रयोग करते मणि निभासा जा सकता है भ्रान्त्वोलिप्त सहृषों वाले समुद्र को भी पार किया जा सकता है, क्रुद्ध साँप को भी शिर पर फूल के सहस्र धारण किया जा सकता है, परन्तु (ऐसे) मूर्ख मनुष्य को बस में नहीं किया जा सकता (जिसका) मन बुधदर्यों में विक्षिप्त है ॥४॥

सभेत सिपत्तासु संसमपि यत्नत पीठयन् ।
पिदेच्च मृगतृप्यिवासु ससिलपिपासादित ॥
पदाचिदपि त्पर्यटञ्छशविपाण्यमासादये-
न तु प्रतिनिविष्टमूलजनचित्तमाराधयेत् ॥५॥

मुक्ति से घेरने पर रेत से भी लेस प्राप्त किया सकता है । प्यास मनुष्य मृगमरीचिका से भी पानी पी सकता है और राजने पर वाय गरगास की सींग भी मिस जाय । परन्तु (ऐसे) मुद्ग नर को मग । नहीं किया जा सकता (जिसका) मन बुधदर्यों में फँसा रह्य

ध्यात्वा वासमृणालनन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते ।
 धेत् सञ्चमणोऽधिदरीपकुसुमप्रान्तेन सन्नह्यते ॥
 माधुर्यं मधुविन्दुना रञ्चयितुं क्षाराम्बुधेरोहते ।
 नेतुं वाञ्छति यः क्षलात्रयि सतां सूक्तं सुधास्यदिभि ॥६॥

जो दुष्टकों को अपने अप्रतस्वी सुक्तियों से अश्वे रास्ते पर लाना चाहता है वह (निदधय ही) नरम कमलनास की बोरी से हाथी को बाँधने को गिरीप की पंखुदियों से हीरे को बेपने की तथा एक बूद गहद से गारे सागर को मीठा करने को मिथ्या कामना करता है ॥६॥

स्वायत्तमेकान्तगुण विधात्रा विनिर्मित द्यादनमज्ञताया ॥
 विनेपत सर्वविदां समाजे विभूषण मौनमपण्डितानाम् ॥७॥

मूर्खता के आधारण के रूप में ब्रह्मा ने मौन का सर्जन किया । यही एक गुण है जो अपने वद्य में रहता है । विनेपस्य से विद्वानों की समा में पुषघाप रहता ही मूर्खों का अज्ञकार है ॥७॥

यदा विञ्चिज्जोऽह द्विप इव मदान्ध समभव ।
 तदा सवजोऽम्भीत्यभवदवलिप्त मम मन ॥
 यदा विञ्चित्विञ्चिद्व्युषजनसबाशादवगत ।
 तदा मूर्खोऽज्मोति ज्वर इव मदो मे व्यपगत ॥८॥

जब मैं स्वल्पज्ञ होने पर हाथी के समान मदीय या सब मेरा मन करने को सर्वज्ञ समझ कर दम्भ से भर गया । (परन्तु) जब मुझ परिलभत जनों के सम्पर्क से बृहद जानबारी हुई तब यह पता चला कि मैं मूर्ख हूँ (और फिर) मेरा अविमान अकार की तरह उतर गया ॥८॥

कृमिकुसचित लालाक्षिन्न विगर्हि जुगुप्सित ।
 निस्पमरस प्रीत्याक्षादन्नरास्थि निरामिषम् ॥
 सुरपतिमपि वा पाच्यस्थं विलाक्य न शक्नोते ।
 न हि गणयति क्षुद्रो जन्तु परिग्रहफल्गुताम् ॥६॥

बुद्ध कोटि वा जन्तु उस वस्तु की शुद्धता पर (अपवा निसारता पर) ध्यान नहीं देता जिसे वह ग्रहण करता है। (क्योंकि) निर्जन्म कृता जिस समय कीड़ों से मरे हुए सार से सने तथा दुर्गन्ध से मरे हुए मांसहीन और मीरस हाक को बड़े प्रेम से खाता रहता है उस समय अपने पास लड़े हुए इन्द्र को देख कर भी उन पर ध्यान नहीं देता ॥६॥

शिर शार्धं स्वर्गास्पतति चिरसस्तत्सितिधर ।
 महीध्रादुत्सुक्लादवनिमवनेश्चापि जसधिम् ॥
 अधो गङ्गा सय पदनुपगता स्तोत्रमथ वा ।
 धिवेकभ्रष्टानां भवति विनिपात शतमुत्त ॥१०॥

बुद्धि भ्रष्ट लोग संभदों तरह से निरन्तर उसी प्रकार नीचे गिरते ही जाते हैं जैसे गङ्गा भी पहले स्वर्ग से गङ्गा जी ने शिर पर गिरी फिर वहाँ से ऊँचे पर्वत पर पवत से पृथिवी पर और फिर पृथिवी से समुद्र में क्रमशः नीचे ही गिरती गई ॥१०॥

शनयो वारयिन्नु जलेन हृतमुक् ध्येण सूर्यनिपो ।
 नागेन्द्रो निशितापुत्रेण समदा दण्डेन गोगदभो ॥
 व्याधिर्भेजसद्ग्रहैश्च विविधैर्मन्त्र प्रमार्गविष ।
 त्वस्योपधमन्ति शास्त्रविहितं मृतस्य नास्त्योपधम् ॥११॥

शास्त्रीय विधि के अनुकूल सभी चीजों की दवा है। (क्योंकि) आग का पानी से घूप का छाने से मदाय हाथी का तेज प्रनुम स दुष्ट बैल और गदहे का हड्डे से तथा रोगों का अम्यान्व प्रकार की औषधियों से निवारण हो सकता है। परन्तु मूर्ख आदमी की कोई दवा नहीं ॥११॥

माहित्यसङ्गीतकलाविहीन सामान्यपु पुच्छविपाणहीन ।

सृणु न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेय परम पशूनाम् ॥१२॥

जो व्यक्ति माहित्य और संगीत आदि कलाओं से विहीन है वह बिना सींग-पू छ का प्रत्यक्ष जानवर है। इन पशुओं का यह बड़ा माम्य है कि वे बिना कुछ खाए ही जीवित रहते हैं ॥१२॥

येषां न विद्या न तपो न दानं न शीलं न गुणो न धर्मः ।

ते मरत्यसावे भुवि भारभूता मनुष्यस्येण मृगाश्चरन्ति ॥१३॥

मनुष्य का रूप धारण किए हुए वे लोग मृगानास में पृथ्वी पर भारम्बस्य पशु ही हैं जिनके पास न ता विद्या है न तप न दान न शील न धर्म न गुण और न धर्म ही है ॥१३॥

वरं पयतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरं महः ।

न मूर्खजनसम्पन्नं मुनेन्द्रभवनेष्वपि ॥१४॥

मूर्ख पशु का सम्पर्क मन्द है यहाँ भी महा अशुभा। उससे अशुभा तो बन्ध पशुमा के साथ पर्वतों और वनों में भ्रमण करना ही है ॥१४॥

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिर शिष्यप्रदेयागमा ।
 विन्याता कवयो वसति विषये यस्य प्रमोर्निर्घना ॥
 तज्जाहय वसुधाधिपस्य कवयो ह्यर्घ्यं विनापीश्वरा ।
 कुस्स्या स्युः कुपरीक्षका हि मण्यो यरघत पातिता ॥१५॥

वह राजा ही मूर्ख है जिस क यहाँ ऐसे कवि निर्घन हों जिनकी वाणी शास्त्रगत पाठों से रमणीय है जिनकी विद्या शिष्यों के लिए उपयोगी है और जो स्वयं प्रतिद्ध हैं । (क्योंकि) कवि तो बिना सम्पत्ति के भी धष्ट ही है । (उवाहरस्वामी) के औहरी ही छोटे हैं जिन्होंने मणियों का मूख्य काम कर दिया है (अर्थात् मणि नहीं) ॥ १५ ॥

ह्युर्माति न गोचरं निम्नपि श पुष्पाति यत्सवदा ।
 ह्ययिम्य प्रतिपाद्यमानमनिश प्राप्नोति वृद्धि पराम् ॥
 कल्पातिष्वपि न प्रयाति निघन विद्याम्यमतर्धन ।
 येषा ताप्रति मानमुज्झस नृपा वस्तं सह स्पष्टते ॥१६॥

हे राजाशा ! (ऐरव्यं का) अभिमान छोड़ दो । (क्योंकि) उनकी समता करने वाला दूसरा कौन है जिनके पास ऐसी विद्याक्षयी धान्तरिक सम्पत्ति है जिसको धुराने बाक्ता देत नहीं पाता जो सबदा सुन की वृद्धि करती है जो प्रायियों को दान देने पर निरन्तर बढ़ती रहती है और जो कल्पांत (अर्थात् संसार का अन्त) होने पर भी समाप्त नहीं होती ॥ १६ ॥

अधिगत परमार्थस्त्रिण्डिता माधनस्या-

स्तृणामिध सधु सशमीमैव तान्तरादि ॥

अभिनवमदसेत्याश्यामगण्डस्थसानां

न भवति विसतनुर्बारेण वारणानाम् ॥१७॥

ऐसे विद्वान् पुरुषों का घनादर मठ करो जिन्हें मोक्ष तक का साधन (विद्या) मूलम है। (क्योंकि) उन्हें वृण तुल्य धन-सम्पत्ति उसी प्रकार रोक नहीं सकती जिस प्रकार कमलनाभ की छाया में मत्त की छाया से श्यामज्ज मन्सक वाप हाथियों को रोक नहीं सकती ॥ १७ ॥

अम्मोजिनीवननिवासविलासमेव

हसस्य हृन्ति नितरा कुपितो विधाना ।

न स्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां

वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तुमसौ समय ॥१८॥

अत्यधिक कुपित होने पर ब्रह्मा हंस का कमल वन में निवास प्रांग नहीं का वैभव (मात्र) विनष्ट कर सकता है। पर वही (ब्रह्मा) उसके (हंस के) शींग-नीर विवेक वाले मरा का अपहरण करने में समर्थ नहीं है ॥ १८ ॥

✓ केपूरा न विभूषयन्ति पुरुष हारा न चन्द्रोज्ज्वला ।

न स्नान न विलेपन न कुमुम नालवृक्षा मूर्द्धजा ॥

वाण्येवा समलकरोति पुरप या सस्त्रुता धार्यते ।

क्षीयन्ते त्वनु भूषणानि सतत यागभूषण भूषणम् ॥१९॥

केवल बाणी का घनछाया ही घनछाया है अन्य मन्त्रा धाम्पूरण तो वृण मष्ट हा जान है। (क्योंकि) जो वाणा संस्कार के माय धारण की जाती है वही पुरप का प्राभूषित परती है। बंगन चन्द्रमा के मरुत घबल मातियों के हार, स्नान, चन्दन मजे हुए केरा प्रादि मनुष्य को प्रसन्न नहीं कर पाते ॥ १९ ॥

विद्या नाम नरस्य स्वमधिक प्रच्छन्नगुप्त धन ।

विद्या भोगमरी यश्च सुखकरी विद्या गुरुणा गुरु ॥

विद्या बधुजनो विदेशगमने विद्या पर दत्त ।

विद्या राजसु पूजिता न हि धन विद्याविहीन पनु ॥२०॥

विद्या ही मनुष्य की बड़ी सुन्दरता है, वही उसका छिपा हुआ धन है भोग परा तथा सुख देने वाली है गुरुओं की भी गुरु है। विद्या ही परदेरा में बन्धु है परम देवी है और (वही) राजाओं के बीच पूजनीया है। (अतएव) विद्या विहीन मनुष्य पशु ही है ॥२०॥

क्षातिश्चेत्प्रवचन किं किमरिभि प्रोद्योऽस्ति चहेहिना ।

शातिश्चेदनत्नेन किं यदि सुहृद्दिष्योपधं किं फलम् ॥

किं सर्वेयदि दुजना किम् धनविद्याज्जवद्या यदि ।

प्राडा घत्सिमु भूपर्ण मुनविता यद्यस्ति राज्येन किम् ॥२१॥

यदि मनुष्यों के पास धामा हो तो कवच की क्या शक्ति है, यदि क्रोध हा तो (दूसरे) शत्रु की क्या शक्ति है? यदि अपनी जाति के लोग हों तो भाग की क्या शक्ति है? यदि मित्र हों वा अलौकिक देवाओं से क्या प्रयोजन? दुष्टों से अधिक साँप क्या बिगाड़ सकते हैं? जिसमें पास मित्रिकार विद्या है उसे धन से क्या भयलक्ष? और जिसमें लग्ना। उसे धन्य विमूषणा से क्या प्रयोजन? (उसी प्रकार) जिसके पास धन्य विविता है उसे राज्य से क्या प्रयोजन ॥२१॥

दाक्षिण्य स्यजने दया परिजने शाठ्य सदा दुजने ।

प्रीति साधुजन नयो नृपजने विद्वज्जनध्वजवम् ॥

शौच शत्रुजने धामा गुरुजने नारीजन धूतता ।

ये चैव पुराणा वसामु बृहत्साम्सेष्वेव सोऽस्थिति ॥२२॥

संसार में वे ही लोग धेँल होते हैं जो स्वजनों के प्रति उदारता सेवकों पर दया दुष्टों से सदा दुष्टता सज्जनों के साथ प्रेम व्यवहार राजा के सामने नीति, विद्वाना के समक्ष सीधापन, दुश्मनों के साथ बीगता, गुरुजनों के प्रागे क्षमा याचना तथा स्त्रिया के विषय में धूर्तता प्रादि कलाषा में निपुण हैं ॥ २२ ॥

जाड्य धियो हरति सिञ्चति वाचि स्रत्य ।

मानोन्नति दिशति पापमपाकरोति ॥

धेत प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति ।

सत्सङ्गति कस्य कि न कराति पुंसाम् ॥२३॥

अच्छी संगति भला मनुष्या के लिए क्या-क्या नहीं करती ? (क्योंकि) यह बुद्धि की जड़ता हर लेती है, बाणी में सत्य का संसार करती है, सम्मान की शृद्धि करती है, पाप को दूर करती है श्रीर चित्त का प्रसन्न करती है तथा शिष्याओं में यश का प्रसार करती है ॥ २३ ॥

जयन्ति ते मुकृतिनो रससिद्धा षष्ठीश्वरा ।

नास्ति येषां यशभाय जरामरगञ्ज भयम् ॥ २४ ॥

विरुप उन्हीं मत्सर्ग करने धान तथा रस-परिपान में सिद्धहस्त धेँल कवियों की है जिनके कीर्तिस्वी शरीर को बुझाया या मृत्यु का भय महां हाता ॥ २४ ॥

मूढ मञ्चरित सती प्रियतमा म्बामो प्रसादो-मुन ।

मिन्ध मित्रमवञ्चक परिजनो निष्कलेशनेन मन ॥

भाकारो रुचिर स्थिररुच विमवो विद्यावदात मुत्त ।

तृष्टे विष्टपदारिणीष्टद्वरी मपापाने रेजिना ॥२५॥

स्वर्ग के स्वामी, घमोष्ट पूर्ति करने वाले भगवान् धृति जिस पर प्रमत्त हों उसी मनुष्य के घन्धे चरित्र बाल पुत्र पतिव्रता पत्नी, सर्वेव कृपा करने वाला स्वामी स्नेह करने वाला मित्र, संशु परिजन जो ठगते नहीं भ्रामान भी बल से विमुक्त मन सुन्दर शरीर, निरबल सम्पत्ति और विद्या से मुशोभित पुत्र प्राप्त होते हैं ॥ २५ ॥

प्राणापातान्निवृत्ति परधनहरणे सयम सत्यवाक्य ।

बाले धनस्या प्रदान युवतिजनकथामूकभाव परेषाम् ॥

तृष्णान्नोतोयिमङ्गो गुरुषु च विनय सधमृतानुबन्धा ।

मामान्य सर्वशास्त्रेष्वनुपहृतविधि श्रेयसामेव पथा ॥२६॥

मनुष्यों की भलाई के रास्ते में सब हैं—जीवहिंसा न करना दूसरे के धन को चुराने से (अपने मन पर) संयम करना सप बोलना समय पर यथार्थिक दान दना दूसरे पुरुषों की स्त्रियों के विषय में चर्चा होने पर चुप रहना लोभ के स्रोत का निवारण करना अपने से बड़े लोगों से सामने विनीत रहना सभी प्राणियों पर दया भाव रखना और नित्य प्रति न पत्नों से विचक्षित न हाना ॥ २६ ॥

प्रारम्भे न एतनु विघ्नमयेन नाच ।

प्रारम्य विघ्नविहृता विरमन्ति मध्या ॥

विघ्न पुन पुनरपि प्रतिहन्यमाना ।

प्रारम्भमुत्तमजना न परिरयजति ॥२७॥

नाग बोटि के लोग टर के मारे (पिसी बाय का) प्रारम्भ ही नर करते मध्यम श्रेणी के लोग शुरू करने बाधाओं के पहने पर रा जान हैं (अर्थात् हुतात्त होकर कार्य बन्द कर देते हैं) (परन्तु) विघ्नों के बार-बार घात होने पर भी एक बार प्रारम्भ कर देने पर उराम बोटि के लोग कार्य नहीं छोड़ने ॥ २७ ॥

घसतो नाम्यध्या सुहृदपि न याच्य कृत्रघन ।

प्रिया न्याय्या वृत्तिमसिनमनुमङ्गेष्यमुत्तरम् ॥

त्रिपद्युर्ध्वं स्वयं पदमनृविधेयं च महतां ।

सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधारान्नतमिदम् ॥२०॥

सज्जनों को इस लक्षण की धार के सदृश कठिन धन का उपदेश किसने दिया कि वे दुर्जनों से कुछ मागत नहीं, चाहे धन बान मित्र न भी याचना नहीं करत, उन्हें अपनी न्यायसंगत प्रीतिक्रा ही भली लगती है, उनसे लिए प्राण जाने पर भी कुचर्म करना दुष्कर है, वे प्राप्तियाँ घाने पर भी उच्चता का ही पालन करते हैं एवं महान् पुण्या के साधन का अनुगमन करते हैं ॥ २० ॥

प्रथम मानसोर्ध्वप्रस्ता

क्षुत्क्षामोर्ध्वपि जराकृशोर्ध्वपि शिथिलप्रायोर्ध्वपि कष्ट्यां दशा-

मापन्नोर्ध्वपि विषन्नदीभित्तिरपि प्राणेषु नश्यत्स्वपि ।

मत्तेमेन्द्रविभिन्नबुद्धमन्त्रसंप्राप्तकवचदस्पृह

किं जीणं सृणुमसि मानमहतामप्रेश्वर केसरी ॥२६॥

मानस गहरात्र के विधीण मस्तक के मांस के प्राप्त की कामना करने वाला मित्र जो मम्माम के क्षेत्र में महान् लोगों के बीच सर्वप्रथम है, क्या मूर्खों पास गारोगा ? चाहे वह भ्रम के कारण कितना ही दारुण, दुर्लभ शक्तिशाल कनरा से प्राप्त, निश्चय ही मृतप्राय हो क्यों न हो गया हो (वह मूर्खों पास नहीं जा सकता) ॥ २६ ॥

स्वल्प स्नायुषसावशेषमलिन निर्मासमप्यस्थि गो ।
 या लब्ध्या परितोपमेति न तु सत्तास्य क्षुधाद्यान्तये ॥
 सिद्धो जवुकमङ्गुमागतमपि त्यक्त्वा निहन्ति द्विप ।
 सब कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जन सत्वानुस्य फलम् ॥३०॥

सभी लोग अपने अपने पुरुषाय के अनुसार फल की कामना करते हैं
 चाहे वे कितने ही विपन्न क्या न हों। (क्याकि) कुत्ता बल की बर्षी
 प्रादि से गन्दी तथा माँसहीन हाड़ को स्वल्प मात्रा में भी पाकर संतुष्ट
 हो जाता है यद्यपि (उससे उसकी) सूक्ष्म शक्ति नहीं होती। (परन्तु) घेर
 गोव में घासे हुए सिंघार को टोकर हाथी वा ही शिरार करता
 है ॥३०॥

सांगूनचालनमधश्चरणावपात ।

भ्रमौ निपत्य वदनोदरदशनञ्च ॥

आ पिण्डदस्य कृस्ते गजपुंगवसु ।

घार विसोक्यति चाटुद्यतद्वच भुक्ते ॥३१॥

कृशा भोजन देने वाले के सामने पूछ हिलाठा है, परों पर भुपकर
 सर रख देता है और जमीन पर गिरकर पेट घीर मूत्र दिग्गलाश है यमर्दि
 धीन्ठा का प्राचरण करता है। (परन्तु) गजराज अपने प्राहार देने बाप
 (व्यक्ति) की ओर गम्भीरतापूर्वक देखता है और घनेर प्रकार से पुसनाए
 जाने पर ही भोजन करता है ॥ ३१ ॥

स जातो येन जातेन याति वश समुन्नतिम् ।

परिवर्तित्ति मसारे मत्त यो धा न आयते ॥३२॥

वही (वास्तविक भय में) उत्पन्न हुआ है जिसके जन्म सेने से बंध
 न उत्पन्न होता है। (क्याकि) परिवर्तनशील संसार में मरण के बाद कौन
 क्या नहीं होता ॥ ३२ ॥

दुःखमस्त्ववकस्त्वेव द्वे गता स्तो मनस्विनाम् ।

मूर्ध्नि वा सर्वमौकस्य विधीर्येत वनेऽप्य वा ॥ ३३ ॥

घेष्ठ पुरुषों की पूष के गुण्ये के समान दो ही गति होती है। या
 ता (वि) मभी लोगों के मिर पर मुशामित होंगे (घर्यात् पृष्य पक्ष में
 मिर का हार बनेगे मनस्वियों के पक्ष में मूर्धन्य बनेगे) घयवा वन में
 मूष कर भर जायेंगे (पृष्य पक्ष में वन में ही ममान्त हो जायेंगे घेष्ठ
 के पक्ष में वनवास धारण कर लेंगे) ॥ ३३ ॥

सुखन्येऽपि बृहस्पतिप्रभृतय समाविता पञ्चपा-

स्ताप्रत्यप विघ्नेपवित्रमस्त्वो राहुन वरायते ॥

द्वेषेव यस्मिन् दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरो मामुरौ ।

भ्रान पवणि पश्य दानवमति शोर्पाविनेपोहृत् ॥ ३४ ॥

ह मादयो ! देखो अमात्रम और पूर्णिमा की दानवों का स्वामी राहु
 दिनरा बक्स मन्त्र का मात्र नेत्र रू गया है केवल दो ही (मरानों) कम
 पने बान गिन के स्वामी मूष और रात्रि के प्राणेश चन्द्रमा का ही प्रमता
 है। विघ्न परात्रम की कामना के कारण यह बृहस्पति आदि और भी
 पाँच-छ घेष्ठ प्रहा के प्रति अनुता नहीं गियमाता ॥ ३४ ॥

वहति भुवनश्रेणीं शेष पश्याकसकम्पिनां ।

कमठपतिना मध्येपृष्ठ सदा स विधायते ॥

समपि फुहते शोहापीन पयोधिरनादरा-

दह महसां नि सोमानदधरिशविनृतय ॥ ३५ ॥

अहा ! महान् लोगों के आचरण के बेभय का कोई अन्त नहीं (बया कि) शेष नाग अपने शीशु सुबनों का भार धारण करते हैं, (और पक्ष्मप श्री अपनी पीठ पर उन शेष जी को (भी) सदा धारण करते हैं । (और) समुद्र ने निरादर करने उन पक्ष्मप जी को भी शीशु क अधीन कर दिया (ध्वनि यह है कि महान् लोग समुद्र की तरह होते हैं) ॥३५॥

वर पक्षच्छेद समदमघबन्मुक्तकुलिसि
 प्रहाररुदगच्छदवहसदहनोद्गारगुरुभि ॥
 तुपाराद्रे मूनोरहह पितरि केशविवरो ।
 न चासौ सपात पयसि पयसां पस्युर्धित ॥३६॥

मनाज के लिए मदीन्मत्त इन्द्र द्वारा पलाए गए ब्रह्म की जलती हुई आग की लपट के समान (भयंकर) प्रहार से पर्वतों का कट जाना अच्छा होता (परन्तु) उसने लिए यह उचित नहीं था कि वह अपने पिता हिमाजय को दुग्ध में छोड़कर समुद्र में डूब कर अपने पंत बघाता ॥३६॥

यदचेतनोऽपि पादं स्पृष्ट प्रवसति सधितुरिनवांत ।
 तसोजम्बी पुर्य परकृतविकृति षष सहते ॥३७॥

तेजस्वी लोग दूमरों से किए गए अभमान जैसे सह सकते हैं (क्योंकि) सूर्यमान् मणि जड़ होने पर भी सूर्य के (गिरण की) परणों से घू जाने पर जन उठता है ॥३७॥

सिंह शिगुरपि निपतति मदमलिनवभोलमिसिगु गजेगु ।
 प्रवृत्तिरिय सरवदता न तनु यपस्तजसो हेगु ॥३८॥

मिह का बन्ना नी न स भी हूर उरुस्यत बाने हावियों पर ही प्रहार करता है (ब्याक) तबस्वी प्राणियों की यही प्रकृति हो है। निरक्षय ही बल का कारण वायु नहीं है ॥२८॥

जात्रियातु रसातल गुणगणन्तम्याप्यथो गच्छता-
 च्छ्याम गन्तव्यतामन्तत्त्वनिजत सन्देहता वह्निना ॥
 शीर्षे वरिष्ठि बध्ममाणु निजतन्वयोञ्जु न कवल ।
 यनवन विना गुणानृणसत्रप्राया समस्ता इने ॥२९॥

हमारे लिए वा कवल धन चाहिए जिस एक क बिना सभी गुण तिनके के टुकड़ क सट्टा है—बाहू जात्र-यात्र रसातल में (बर्षों न) जाय अन्य गुणों का समूह और भी मँचे बना जाय सदाबार पहाड़ से गिरकर दिनरात हा जाय भाग बाहू वीरनाम्नी वायु पर वीघ्र (श्री) बन्ध का म पद जाय ॥३०॥

‘वानाद्रियाणि सुतनानि तदेष कर्म
 सा बुद्धिरप्रतिहता वचन तदेव ।
 अयोष्मया विरहित पुरुष स एव
 मय क्षणेन भवतीति विचिप्रनेतम् ॥४०॥

वा इदन्त गीति है कि धन की गम्भी के बि। वही मनुष्य जिनके मय इन्द्रियों बटी है वही व्यवहार (मो) है वही प्रमद बुद्धि और बर्ह बारी है अरुमात्र में और ही हा जाता है ॥४०॥

‘धन्यान्नि दित्त स नर कुलीन
 स पण्डित स श्रुतबानुरूप ।

स एव वक्ता स च दशनीयः

सर्वे गुणा काञ्चनमाश्रयन्ति ॥४१॥

सभी गुण सुवर्ण में निवास करते हैं। (क्योंकि) जिसके पास धन है वही आदमी अच्छे कृत्त का है वही विद्वान् वही दास्त्रज्ञ और गुणों का पारस्त्री है वही भाषण देने में कृशत है और उसी का दर्शन करना चाहिए ॥४१॥

दीर्घान्पान्नुपतिर्विनश्यति यति सङ्गास्तुतो सासना-
द्विप्रोऽनव्ययनात्कुल मुत्तनयाच्छीलं लसोपासनात् ॥

ह्रीर्भङ्गादनवेक्षणादपि कृपि स्नेह प्रवासाश्रयात्
मन्त्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयास्यागात्प्रमादादनम् ॥४२॥

बुरे मन्त्रियों की सलाह से राजा मष्ट हो जाता है (उसी प्रश्नर) भोग-विलास से तपस्वी लाङ्घ्यार से पुत्र न पढ़ने से ग्राह्यण कृपुष से बंश दुष्टों की पूजा करने से सदानार, मदिपान स लग्ना विन निगरानी से श्रेती परदेण में रहने से प्रीति प्रेम के अभाव से मित्रता अनीति से उन्नति और आशस्य के कारण अपभ्यय करने से धन- ये धर्म मष्ट हा जाते हैं ॥४२॥

दान भोगो नाशस्त्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।

यो न ददानि न भुङ्क्ते तस्य सुतीया गतिर्भवति ॥४३॥

धन की तीन गतियाँ होती हैं—दान उपयोग एवं विनाश। जो न दान करता है और न भाग करता है उसकी सम्पत्ति की तीसरी (अर्थात् विनाश बाझी) गति होती है ॥४३॥

मणिः शण्डोल्सीढ समरविजयो हेतिनिहतो ।
 मदक्षीणो नाग शरदि सरित श्यानपुलिना ॥
 कलाशेषश्चन्द्र सुरतमृदिता वाससलना ।
 सनिम्ना शोभन्ते गमितविमवाश्चायिषु नृपा ॥४४॥

ये सभी चीजें (धपनी) इराता में ही सुरोमित होती हैं—सान पर लरायी हुई मणि, ललवार से भाहत मूढ का विजेता, मवहीन हायी, रेत के छत्र वाणी [शरद अत्रु की नदी दूज का चाँद तथा सम्भोग स क्लान्त नवमूर्ती ॥४४॥

परिक्षीण कश्चित्स्पृहयति यवानां प्रसृतये ।
 स पदवान्सपूण कलयति धरित्रीं तृणसमाम् ॥
 धतश्चार्नकान्त्याद्गुरुस्सप्युतयार्येषु धनिना-
 मवस्या वस्तूनि प्रययति च सकोवयति च ॥४५॥

जब कोई गिरी हलत में रहता है तो वह पसर भर जो की मालसा रगठा है, वही (मनुष्य) बाद में (जब) सम्पन्न हो जाता है तो मारी पृथिवी का वृण तुन्य मानने लगता है । धतएव सम्पतिरापी व्यक्तियों की यह विषम अवस्था ही उनके बायों में गुलता एवं सपुता द्वारा चीजों का विस्तार तथा संकोच करती है (धर्मन् उन्हें उत्थान तथा पतन देना की ओर स जाती है) और उमरे भाग्य में संशुद्धि प्रमवा गिरनी सती है ॥४५॥

राजन्दुषुभसि यदि क्षितिधेनुमेना ।
 तेनाद्य वत्समिव सोधममु प्रपाग ॥
 तस्मिन्स्य सम्पगनिश परिपोष्यमाणे ।
 नानाकर्म फसति कल्पसनेव नूमि ॥४६॥

हे राजन् ! यदि (तुम) इस पृथिवी सृष्टी गाय को दुहना चाहते हो तो इस प्रजासृष्टी बछड़े का इस समय पालन-पोषण करो । (क्योंकि) उसी के समुचित रूप से निरन्तर पोषित होने पर पृथिवी बलशक्ता की तरह माना प्रसार के फल सँभरी पूरी रहेगी ॥ ४६ ॥

सत्यानृता च पर्या प्रियथादिनी च ।
 हिंसा दयालुरपि धार्यपरा वदाया ॥
 नित्यध्वम्या प्रचुरनित्यघनागमा च ।
 वाराङ्गनव नृपनीतिरनेकस्था ॥४७॥

राजनीति बेशका की तरह रूप बदलती रहती है, क्योंकि वह सच्ची और झूठी, कठोर और मृदुभाषिणी, हिंसापरक और दयालु, लोभी और दानशील निरन्तर अपभ्यस्य करने वाली और (बैस ही) अत्यधिक धन का सञ्चय करने वाली बन जाती है ॥ ४७ ॥

विद्या कीर्ति पालन ब्राह्मणानां
 दान भोगो मित्रसरक्षण च ।
 येषानेते पद् गुणा न प्रवृत्ता
 योऽर्घ्यस्तेषां पाथिवोपाश्रयेण ॥४८॥

जिसके घर में विद्या यश ब्राह्मणों की रक्षा दान तथा उपभोग भुक्षणों की सुरक्षा आदि छः गुण नहीं उन्सि हुए उसे राजा की परिश्रमों से क्या लाभ ॥४८॥

यदात्रा निरुभासपट्टसिगम स्तोत्र महदा धन ।
 यदात्रा निरुभासपट्टसिगम स्तोत्रा मेरी सत्तो माधिबम ॥

द्वारा नव वित्तवस्तु कृपणां धृति वृथामा कृत्या ।
 ये पश्य पयोनिघात्रनि घटो गृह्णन्ति तुल्य जलम् ॥४६॥

भाड़े भाड़ा भाड़े बहुत जितनी भी सम्पत्ति ब्रह्मा न माय्य में निम्न
 है उतनी तो ये निम्नान में भी मित्र जाती है धीरे टपटप घषिक् मूमेर
 घट पर भी नहीं मिलती । इसलिए धैर्य धारण कर, धनाह्य लागों
 सामने धैर्य हाथ मत पसार । (क्योंकि) दत्ता ! यदा कृपण धीरे सुगर
 नों में स समान मात्रा में ही जल ग्रहण करता है ॥४६॥

त्वमेव चात्रकाधारोऽर्जुति केषां न गोवर ।
 किमम्नोदवराम्माक भार्पण्योक्ति प्रतीक्ष्यते ॥४७॥

ह धेण्ड धन ! यह जिस मही माधूम है कि तुम्हीं (मुन) पनीह क
 एक मात्र धायम हो ! (कि) तुम मेरे बीनतापूर्ण वधनों (प्रापना) की
 प्रतीक्षा क्यों करते हो ? (धर्मत् तुम्हें बिना मेरे याचना किए ही मेर
 प्रतीक्षा की क्षमि करनी चाहिए ।) ॥४७॥

रे चातक तावचानमनसा मित्र क्षण श्रूयता-
 मम्मोदा यद्बो वसन्ति गगने सर्वेनि नैतादृशा ॥
 केविद्वृष्टिनिगद्रयन्ति वमुष्ठा गजन्ति केविद्वृष्ठा ।
 यय पश्यसि तस्यतस्य पुरता मा श्रूहि दीन वव ॥४९॥

ह पाठक मेरे मित्र ! जय ध्यान स (मिरी बात) एक पन मुन ।
 धाराग में धान्य ता बटुन है मर दम (इच्छा पूरा करने में समर्थ) नहीं
 है । कृपणता वरा स प्रविषी को भरी पूरी कर दत है, कृपण व्यय गजन
 (माय) करत है । (इन्तिग) बिडे त्रिड नू देपना है उन मनी के सामने
 दीनतापूर्ण याचना मत कर ॥४९॥

अकस्मत्स्वमकारणविग्रह परधने परियोपिति च स्पृहा ।
सुजनकन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रवृत्तिसिद्धमिद हि दुरात्मनाम् ॥५२॥

दुष्टजनों में स्वभाव से ही क्रूरता अकारण सबाई भयाङ्क पराये धन और पर स्त्री का लोभ और अपने परिवार तथा मित्रों के विषय में सहन-शीलता का अभाव पाया जाता है ॥५२॥

धम दुर्जन मित्वा

दुर्जन परिहर्तव्यो विद्यया भूपितोऽपि सन् ।
मणिनालकृत् सर्प किमसौ न भयङ्कर ॥५३॥

विद्या से अलंकृत भी दुर्जन व्यक्ति का सर्वथा परित्याग करना चाहिए । (क्योंकि) मणि से भूपित साँप क्या भयाङ्क नहीं होता ॥५३॥

जाह्य ह्रीमति गण्यते व्रतश्री दम्भ शुचा शैतव ।
दूरे निष्कृण्ता मुनो विमतिता वैन्य प्रियासापिनि ॥
तेजस्विन्यवसिप्तता मुक्तरता वक्तव्यशक्ति स्थिरे ।
सत्कोनाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनर्नाङ्कित ॥५४॥

गुणवान लोगों का कौन ऐसा गुण है जिस पर दुर्जनों ने कल्पित नहीं लगाया है ? (क्योंकि वे) सज्जशील व्यक्ति को दूर से ठहराते हैं (उसी प्रकार) व्रत का आचरण करने वाले में धर्म देखते हैं पवित्र जना में धर्म कपट वीर-पुरुष में क्रूरता मुनि में बुद्धिहीनता, प्रिय भाषी में दीनता अज्ञस्वी जनों में धर्मद वक्ता में वाचालता और स्थिर एडि वालों में आलस्य देखते हैं ॥५४॥

सोमश्चेदगुणेन किं विद्युता यद्यस्ति किं पातकं ।
 सत्यं चेतपसा च किं द्युवि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम् ॥
 सौजन्यं यदि किं गुणै स्वमहिमा यद्यस्ति किं मठनं ।
 सद्दिशा यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युता ॥५५॥

सोम होने पर और भवगुणा से क्या (भयोंके अन्य भवगुण)
 सामने फीके हैं) । (उसी प्रकार) कुटिलता रहने पर पापों से क्या ? स
 रहने पर सपने से क्या (प्रयोजन) ? मन पवित्र रहने पर तीर्थ का क्या ?
 यदि सज्जता हो तो अन्य गुणा से क्या (मत्तलव) ? यदि स्वाभिम
 तो प्रामुख्य की क्या (जह्नुत) ? यदि सञ्चे भय में विधा है तो स
 का क्या भय और भगर बध्नामी हो गई है तो मृत्यु क्या उस
 कर हो सकती है ॥५५॥

शशी दिवसभूसरो गलितयौवना कामिनी ।
 सरो विगतवारिज मुखमनक्षर स्वाकृते ॥
 प्रभुधनपरायण सततदुर्गत सञ्जनो ।
 नृपाङ्गणगत खलो मनसि सप्त शन्यानि मे ॥५॥

ये मात्र कृति मेरे मन में दुःख उत्पन्न करते हैं— दिन में
 पद्ममा बिनट यौवन वाली स्त्री कमलविहीन ताभाव, मुँह
 बान व्यष्टि का निरदार मुख, धनवान् रूपण, निरन्तर दुर्गति
 सदापारी तथा राजसमा में प्राये हुए दुर्जन ॥ ५६ ॥

न कश्चिद्विषयकोपानामात्मोयो नाम भ्रमुजाम् ।
 होतारमपि जृह्मान् सृष्टो दहति पावक ॥५॥

ऐसे राजाओं का कोई आत्मीय जन नहीं हो सकता जिसका श्रेय प्रचण्ड होता है क्योंकि छू जाने पर अग्नि होम करने वाला को भी जला देती है। अमास्य श्रेणी के सम्पर्क में आकर भलाई करने वाला भी कुन्त का ही भागी होता है, जैसे अग्नि के जनाने वान को अग्नि ही जला देती है। ॥ ५७ ॥

मीनामूक प्रयथनपटुश्चाटुको जल्पको वा ।
 घृष्ट पार्श्वे वसति च तदा दूरतश्वाप्रगत्म् ।
 क्षान्त्या भीरुपदि न सहते प्रायशो नाभिजात ।
 सेत्राघर्मं परमगहनो यागिनामप्यगम्य ॥५८॥

सवा भाव अत्यन्त कठिन है, योगीजन भी इसका पार नहीं पाते। क्योंकि धुनधाप रहने पर सबक गूंगा, बोरने पर एकबासी नजदीक रहने पर घृष्ट दूर रहने पर अकुशल क्षमाशील होने पर बायर और अक्षय्य होने पर प्रायः दुरे परिवार का कहलाता है ॥ ५८ ॥

उद्भासिताखिलप्रसस्य विश्वसस्य
 प्राज्ञातविष्णुतनिजाधमयम्कृते ।
 देवादशासविभवस्य गुणद्विपोज्य
 मीनस्य गोवरगर्तं मुगामास्यतं कौ ॥५९॥

ऐसे नीच (मनुष्य) के दंग रहकर फोन मुन्य वा सजना है जो सभी दुष्टों का उभाड़ने वाला और निरपुत्र है जिसके विद्वान् जन्म व सुष्ठु कर्मों का उदय हो रहा है जिसने सोभाग्य व सम्पत्ति भी प्राप्त कर ली है (और) जो गुरुओं से पर रणज है ॥५९॥

प्रारम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण सध्वी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् ।
दिनस्य पूर्वाह्नपराधमिन्ना द्यायेव मंत्री खल सन्नानाम् ॥६०॥

दुजनों की दोन्ही दोपहर के पहले की छाया की तरह शुरू में बहुत लम्बी होती है और फिर क्रमशः घटती जाती है और सज्जनों की मित्रता दोपहर के बाद की छाया की तरह पहले छाती रहती है, फिर धीरे-धीरे बढ़नी जाती है ॥६०॥

मृगमीनसज्जनानां सृणुजलसतोपविहितवृत्तीनाम् ।
सुद्वन्द्वधीवरविद्युना निष्कारणर्वरिणो जगति ॥६१॥

हिरन मछली और सज्जन लोग तिनका (साकर) जल (पीकर) और सन्ताप करके जीवम निर्वाह करते हैं । (परन्तु) बहेलिया धीवर और कुटिल जन मित्रयोजन ही इन हिरनों मछलियों और सज्जना संसार में द्वेष रसक हैं ॥६१॥

वाञ्छा सज्जनसङ्गने परगुणे प्रीतिर्गुरो नम्रता ।
विद्याया ध्वसन स्वयोपिति रमिर्लोकारवादाद्भयम् ॥
भक्ति गूलिनि शक्तिरात्मदमने ससगमुक्ति खले-
प्वेते ययु वसन्ति निमलगुणास्तेभ्यो नरभ्यो नम ॥६२॥

एक विमल गुणवान् पुराणों का ममस्कार है जिनकी इच्छा सज्जना संसर्ग रगन की रहती है, जिनकी दूरियों के गुण में प्रीति रहती है जिनमें गुणों के सामने नम्रता विद्या में अमक्ति बननी पत्नी की सममागम शार निन्ता स हर भगवान् शशुर में भक्ति आत्म संयम की दामता तथा दुर्जनों की संगति व परिष्कार की भावना रहती है ॥६२॥

विपदि धैर्यमधाम्युदये क्षमा
 सदसि वाक्पटुता युधि विक्रम ।
 यशसि चामिर्षविवर्षसन श्रुती
 प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ॥६३॥

महात्माओं में स्वभावतः वे गुण होते हैं—विपत्ति में धीरज उत्कर्ष
 में क्षमा क्षमा में बोजने का कौराज युद्ध में वीरता कीर्ति में अमिर्ष
 तथा शास्त्रों में आसक्ति ॥६३॥

प्रदान प्रच्छन्न गृहमुपगते सम्भ्रमविधि
 प्रिय हृत्श मोन सदसि कथन चाप्युपकृते ।
 अनुरसेको तन्म्यां निरभिमवसारा परबधा
 सतां केनोद्दिष्ट विपममसिधाराव्रतमिदम् ॥६४॥

तजबार की धार के समान (कठिन) द्रव का सज्जनों को किसने
 उपवेश दिया ? जिसके कारण उनमें दान को छुप्त रखना घर पर आए
 (अतिरिक्त) का मत्कार करना मनाई करने हुए रहना दूरियों के उपहार
 को ममा के बीच कहना सम्पदा पाकर धर्म न करना तथा
 दूरियों की शर्चा करते समय अनादर न करना (आ गया) ॥६४॥

नरे इलाध्यस्तयागं धिरसि गुहनादप्रमिणता ।
 मुने सत्या वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुसम् ॥
 हृदि स्वस्था वृत्ति श्रुतिमधिगतैश्चरतफल ।
 विनार्प्यैश्वर्येण प्रवृत्तिमहतां महानमिदम् ॥६५॥

क्षमव न होने पर भी स्वभाव स महान् लोगों के यही आनूपण है—
 य में प्रशस्नीय दान गुरुजनों के घरणों पर झुकने वाला मन्त्रक
 व में सम्य बचन भुजाओं में प्रचुर वर हृदय में पवित्रता तथा समस्त
 त्त्रों का वर रखने वाल बान ॥६५॥

सपत्नु महता वित्तं भवत्युत्पलकोमसम् ।

घापत्नु च महाराजशिलासघातमर्कश्यम् ॥ ६६ ॥

महात्माओं का मन देस्वर्य में कमल के सदृश कोमल और विपत्ति
 में पर्वत की दीर्घ शिला के सदृश कठोर रहता है ॥६६॥

सतसामसि सस्थितस्य पयसो नामापि न जायते ।

मुक्ताकारतया तदेव नसिनीपत्रम्बित राजते ॥

स्वार्था सागरद्रुक्तमध्यपतित तमोक्तिव जायते ।

प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणा ससगतो देहिनाम् ॥६७॥

प्राय मनुष्यों के निम्न मध्यम तथा उत्तम जाति के गुरु सम्पक से
 ही उत्पन्न होते हैं (कर्वाँज) जिस जल बिन्दु का तपते हुए साहे पर
 पड़ने पर उसके नाम का भी नहीं पता चलता वही कमल के पत्र पर
 पड़ने से मातियों की तरह बिखरित होता है और (बही) स्वाधि
 मन्त्र में सागर की सीप में पड़ने पर मोती ही बन जाता है ॥६७॥

य प्रीणयेत्सुचरितं पितरं स पुत्रो

यद्भूतैरिव हिममिच्छति तत्कन्तनम् ।

तन्मित्रमादि मुने च समक्रिय यदे-

त्प्रय जगति पुण्यकृतो सन्तं ॥६८॥

संसार में ये तीन चीजें सरकर्मियों को ही मिल पाती हैं—पेसा पुत्र जो अपने सन्तान से निता को प्रसन्न रख ऐसी पत्नी जो अपने पति का सदब हित चाहे तथा पेसा मित्र जो दुःख-मुःख में समान भाव रहे ॥१८॥

एषो देव वेश्यो वा शिवो वा
एष मित्र भूपतिर्वा यतिर्वा ।
एषो वास पत्तन वा घन वा
एषा नारी सुन्दरी वा दरी वा ॥६६॥

ददता एव ही (होना चाहिए अर्थात् पूजना चाहिए) केवल वा शहर
पति मित्र एक ही (होना चाहिए) राजा वा तन्त्री निवास एक ही होना
मगर वा वन तथा स्त्री एक ही (ग्रहण करना चाहिए)—रूपवती
नारी वा पुत्र ॥१९॥

नैकस्वनाममन्त परगुणवर्न स्वान्गुणान्नापमत् ।
स्थार्थान्स्मिन्मादयन्तो विहातप्रियतरारम्भयन्ना परार्थे ॥
धान्त्यभाभेऽरुथापरमुत्तरमुत्तान्दुजना रूपमत्
सन्त साद्वयवर्षा जगति धृमता यन्पनाम्भचनाया ॥७०॥

ऐसे विस्मयकारी आचरण करने वाले अथवा सम्माननीयजन
जिसे धन के पान न होंगे या ममता के कारण ऊँचे उठते हैं दूसरों
का गुणगान करके ही अपने गुणों की मशानि करते हैं निरन्तर मण्डी
तरङ्ग दूसरों के लिए प्रजापति परक ही अपने कार्य निष्ठा करते हैं जो
रुग्ण वधन योजन प्राप्त पुष्टों के मुन का अपनी दामा से ही मजि
पर दत्त हैं ॥७०॥

भवन्ति नम्रान्तरव फलोद्गम-
 नवाम्बुभिर्भूरिविलम्बिनो घना ।
 अन्तुद्वता सत्पुरवा समद्विमि
 स्वभात्र एवप परोपकारिणाम् ॥७१॥

घन-सम्पत्ति स अक्षे माग उदरह नही हाने (विनत हो जात है) जिस
 तार फलों क सा जाने स पृथ भुक्त जान है और नए जप स अपूर्ति
 ने पर बाध्य दर्मान की ओर भुक्त जाने है। (क्योंकि) परोपकार करने
 लों की यही प्रकृति होती है ॥७१॥

श्रीव श्रुतेनव न कुण्डलेन दानेन पाणिन तु बर्कणेन ।
 विमात्रि वाय करुणापराणा पगेनदारर्न तु घन्दनेन ॥७२॥

दवानु जनों का शरीर परोपकार से न कि घन स विरुद्ध होता
 है। (श्रीव वय ही जस) मन शान्त (मनन)म स कि कुण्डल (धारण करने)
 से शाय दान (करने) स न कि बंगन(पहनन स (मुग्धाभित्त होता है) ॥७२॥

पामाश्रिवारयति योजयते हिताय
 गुह्य च गूयति गुणान्प्रकटी करोति ।
 आपद्गतं च न जहाति ददाति कामे
 समिप्रसन्नमिति प्रवदन्ति सन्त ॥७३॥

साधुजन अक्षे सोम्य क प मयए बनान है—यह पाप स ह्यता
 है दिन कार्य में संतप्त करना है छिपान धानी बातों को गुप्त करना है,
 गुप्तों को प्रचारित है, विपत्ति में माय नहीं छोड़ना और समय पढ़ने पर
 (श्रुत्यादि की) देना है ॥७३॥

पद्माकर दिनकरो विकवीकरोति
 चद्रो विकासयति करवधक्रवालम् ।
 नाम्भयितो जलघरोऽपि जस ददाति
 सन्त स्वय परहिते सुकृताभियोगा ॥७४॥

माधु पुरुष स्वयं ही दूसरे के हित के लिए उपम करते हैं। (क्योंकि)
 सूर्य (बिना प्रार्थना के) कर्मस को खिसा देता है तथा बादल भी
 बिना मापना किए ही पानी देता (बरसाता) है ॥७४॥

एके सत्पुरुष्या परायघटका स्वार्थ परित्यज्य ये ।
 सामान्यास्तु परायमुद्यमभृत स्वार्थाविरोधेन ये ॥
 तजमी मानुपराक्षसा परहित स्वार्थाय निष्पन्ति ये ।
 ये निष्पन्ति निरर्थक परहित ते के न जानीमहे ॥७५॥

जो अपने स्वार्थ को छोड़कर दूसरे के कर्तव्यों का सम्पादन करते हैं वे
 सत्पुरुष हैं जो अपने स्वार्थ से न टपकाने वाले परार्थ का पालन करते हैं वे
 साधारण बोटि के (व्यक्ति) हैं जो अपने हित के लिए दूसरों का कुछ
 करने हैं वे मनुष्यरूप में दानव हैं (परन्तु) जो बिना मतसब ही
 दूसरों के हित का हनन करते हैं उन्हें क्या कहा जाय यह मैं न
 जानता ॥७५॥

धारगान्मगतोदकाय हि गुणा दत्ता पुरा तेऽखिसा ।
 धीर तापमयेदय तेन पयसा ह्यारत्मा कृशानी हृत ॥
 गन्तु पायसमुन्मनस्तदभयदृष्ट्वा तु मित्रानद ।
 युक्त तेन जलेन शान्पति सता मीप्रीपुनस्वीहृषी ॥

सत्पुरुषों की मित्रता तो फिर ऐसी ही होती है (जसी दूध और पानी की) (क्योंकि) दूध ने जस से मिलने पर अपने सभी गुण उसे दे दिये। दूध को जलता देखकर जस ने अपने शरीर को आग में हवन कर दिया (अर्थात् दूध के साथ पानी जस गया) (फिर) दूध ने भी अपने मित्र (जल) को दुग्ध में देखकर आग में गिरना चाहा (और फिर) यह उचित ही था कि (छींटे पड़ने पर अपने मित्र) जस से (उसे आमा जानकर दूध) शान्त हो गया ॥७६॥

इत स्वपिति केशव कुसमितस्तदीयद्विपा-
मितश्च शरणार्थिन शिखरिणां गणा घेरते ।
इतोऽपि बह्वानस सह समस्त सर्वात्म-
रहो विततमूर्जित भरसह च सिन्धोर्वपु ॥७७॥

अहो समुद्र का शरीर अत्यन्त विशाल तथा भार सहने में समर्थ है। (क्योंकि समुद्र में) एक तरफ विष्णु सोता है एक तरफ चतुर्बे (विष्णु) बरी राजसों का कुस सोता है, एक ओर शरण चाहने वाले पर्वतों का समूह पड़ा है और फिर एक ओर प्रलयकर बहवानस है (अर्थात् समुद्रकी तरह सत्पुरुष भी सहनशील तथा विशाल हृदय वाले होते हैं) ॥७७॥

तृप्यां छिन्वि मज क्षमा जहि मद पापे रति माहृष्या ।
सत्य धूष्यनुयाहि सापुपदवीं सवस्व विद्वज्जनम् ॥
मान्यामान्य विद्विपोऽप्यदुनय प्रख्यापय स्वा गुणा-
नीति पासय दु खिते मुरु दयापेत्सुसतां सभ्रणम् ॥७८॥

सासकको छोड़ो समा का पालन करो पतंग को त्याग दो
 में आसक्ति मत करो सब बोलो, सज्जनों का आचरण अपनाओ नि
 पुष्टों की सेवा करो माननीय लोगों का सम्मान करो धरियों व
 अनुनय-विनय करो अपने गुणों को प्रकाशित करो, अपने यश की र
 करो (उषा) विपत्ती जनों पर दया रखो। (क्योंकि) यही सज्जनों
 कारण है ॥७१॥

मनसि वचिस काये पुण्यपीयूष पूर्ण-
 बिभुवनमुपकार येणिमि प्रीयणन्त ।
 परगुणपरमप्रमूर्खवर्तीकृतस्य नित्य
 निजहृदि विवसन्त सन्ति सन्त निमन्त ॥७२॥

ऐसे कितने सज्जन हैं (जिनका) मन वचन और शरीर स्वयं स्व
 अमृत से आपूरित है जो तीनों मोक्षों को उपकारा स प्रयत्न करते ।
 तथा नित्य दूसरों के परमाणु (स्वल्प) गुणों को पहचान सा बड़ा मानक
 अपने मन में प्रयुक्तित होते हैं ॥७२॥

नि तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा
 मनाथिताश्च तरवस्तरवस्त एव ।
 मयामहे मसपमेय यदाश्रयण
 यपोसनिवकुटजा धरि चन्ना स्यु ॥७०॥

(हमें) जब स्वर्ग के मुमेर और चांदी के ज्वाल पर्वतों में क्या
 (प्रयोजन) जिसके सहारे रहने का म पड़ पड़े ही है क्या है ? हम तो
 मसयाभय (भी ही प्रभुता) को मानते हैं जिसके आश्रित कंटोम मीम तथा
 कृत्वा (मादि सभी वृक्ष) बन्दन हो जाते हैं ॥७०॥

रत्नमहर्हिस्तुमुपुनं देवा न भोजिरे भीमविषेण भीतिम् ।
सुधां विना न प्रयमुत्त्रिराम न निदिषनायाद्विरमन्ति धीरा ॥८१॥

धैरवान् अपने निदिषत फल को बिना प्राप्त किए रहते नहीं ।
(क्योंकि) अत्यधिक मूस्य वामे रत्न पाकर (भी) देवताओं ने संतोष नहीं
किया (और) न मयाह विष स ही बे डरे । विना अमृत पाए (देवताओं)
ने विश्राम नहीं किया ॥८१॥

क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यंकदायन ।
क्वचिन्द्वावाहार क्वचिदपि च शान्त्योदनरुचि ॥
क्वचित्कन्याधारौ क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो ।
मनस्वी कार्याधी न गणयति दु ख न च मुक्तम् ॥८२॥

मनस्वी तथा सफलता चाहने वामे व्यक्ति न दुःख और न सुख की
परवाह करते हैं । (बि) कमी पदमील पर (ही) सो मत हैं कमी पन्नग
पर शान्त करते हैं, कमी साग साकर ही रहते हैं, कमी चावल आदि
का भोग करते हैं कमी कन्ये ही धारण कर सते हैं और कमी शानदार
वस्त्र पहनते हैं ॥८२॥

ऐश्वर्यस्य विभूषण सुजनता शौर्यस्य वाक्सयमो ।
ज्ञानस्योत्थम श्रुतस्य विनयो विस्रस्य पात्रे व्यय ॥
धन्रापस्तपस क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजिता ।
सर्वेषामपि सर्वकारणमिद शील पर भूपणम् ॥८३॥

सभी गुरों का अमङ्गल और मूल सदाचार है । (बैरा) धर्म का
मूल सञ्जना वीरता का वाली पर नियंत्रण ज्ञान का शान्ति
दास्य (अध्ययन) का विनय धन का योग्य स्थान पर व्यय तापस्या का
शोभावाक स्वार्थस्व का क्षमा (उपा) धर्म का निष्कल होना है ॥८३॥

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु

सक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।

अथ वा भरणमस्तु युगान्तरे वा

न्याय्यात्पथ प्रविशन्ति पदं न धीरा ॥८४॥

धर्मवान् पुण्य उचित माग से पग नहीं हटाते चाहे नीतिज्ञ (उत्तमी) निन्दा करें या प्रशस्ति, चाहे सक्ष्मी (धन) पर्याप्त रूप में लाये या खरी जाय; (और) चाहे (उत्तमी) मृत्यु आज ही हो अथवा युगान्तर में ॥८४॥

मग्नाशस्य करणपीडिततनोम्क्षनिन्द्रियस्य क्षुधा ।

छृश्वान्बुबिब्वर स्वय निपतितो नक्त मुखे भोगिन ॥

तुषस्तस्त्रिचिन्तेन सत्वरमसौ तेनैव यात पथा ।

सोमा पश्यत दीवमेव हि नृणां वृद्धो क्षये कारणम् ॥८५॥

हे पुण्यो ! देखो मनुष्यों के उत्थान-पतन में भाष्य ही कारण है (क्योंकि) निराशा और पिटारे में पड़े रहने से पीड़ित शरीर वाले तथा भू से शिथिल इन्द्रियों वाले साँप के मुख में रात्रि को पिटारे में छेद कर एक चूड़ा गिर पड़ा । उस (चूड़े) के मांस से संतप्त होकर वह (साँप) रीति ही उठी (छेद) के रास्ते से बाहर आया गया ॥८५॥

पातितोऽपि बराघातैस्त्रतस्येव मन्दुक् ।

प्रायेण साधुवृत्तानामस्यायिन्यो विपत्तय ॥८६॥

सदाबाधे सोनों की मुसीबतें स्वाधी नहीं होती । वे दाऊनपुर होती । (क्योंकि) हाथ से पटवा हुआ गेंद ऊपर ही उछलता है ॥८६॥

आत्मस्य हि मनुष्याणां शरीरस्या महाद् रिपु ।

नास्त्रयुधमसमो बभ्रुयं भ्रुवा नावसोदति ॥८७॥

मनुष्यों के शरीर में स्थित आत्मस्य (उसका) बड़ा भारी दुश्मन है।
(और) उषोग के समान (दूसरा कोई) शत्रु नहीं जिसे अपना सेने से
दुन्दुब नहीं होता ॥८७॥

छिन्नोऽपि रोहति तत्र क्षीणोऽप्युपवीयते पुनश्चन्द्र ।

इति विमृशत सन्त सतप्यन्ते न विप्लुता लोके ॥८८॥

संसार में वे महात्मा विपत्ति पड़ने पर सन्तप्त नहीं होते (जो) इस
प्रकार की समझ रखते हैं कि काटा हुआ वृक्ष फिर उग जाता है (और)
क्षीण हुआ भी चाँद फिर विकसित होता है ॥८८॥

अथ ईव प्रदासा

नेत्रा यस्य बृहस्पति प्रहरणवज्र सुरा संनिका ।

स्वर्गो दुषमनिग्रह किम हूरररावतो वारण ॥

इत्यश्वयवसान्वितोऽपि वसिभिर्भग्न परं सगरे ।

सद्ध्यक्त वरनेत्र ईवशरण धिग्धिग्वृथा पोक्ष्यम् ॥८९॥

माय्य वा ही शरणा अन्ध्रा है पौरय भ्यर्ष है, पुरोपाय को बिचार है,
(सोई) ऐसा इन्द्र यन तथा बस होने पर भी शत्रुओं से युद्ध में हारता
; रहा जिसके पास बृहस्पति सरीसे नेत्रा वज्र जैसा अथ देवताओं की
ना स्वर्ग अथा गढ़ ऐशवत सरीसा हापी और भगवान् इन्द्र की पूरी
ना खड़ी थी ॥८९॥

कर्मापत्त फल पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।

तथापि मुधिया भाय्य मुविनायैत्र कुवता ॥९०॥

(यद्यपि) मनुष्यों के कर्म के अधीन (ही) फल होता है (और) बुद्धि (भी) कर्म के अनुकूल होती है, तथापि बुद्धिमानों को बुरा सोच-विचार कर फल करना चाहिए ॥१०॥

खन्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणं सत्त्वितो मस्तके ।

घाञ्छन्देशमनात्प विधिवशात्तालस्य मूल गत ॥

तत्राप्यस्य महाफलेन पतता मग्नं सशब्दं शिर ।

प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रव यात्पापद ॥११॥

प्रायः जहाँ-जहाँ भाग्यहीन (व्यक्ति) जाता है वहीं-वहीं विपत्तियाँ आती हैं । (उदाहरण स्वरूप) सूर्य की किरणों से चंद्र के संतप्त होने पर एक गंजा (व्यक्ति) छाया की इच्छा करता हुआ भाग्यवरा नाम (के पेड़) की छाँट के पास गया । वहाँ भी उसने छत्र पर एक बड़ा मारि फल गिर पड़ा (और उसका छत्र) बड़ी आबाज के साथ टूट गया ॥११॥

शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीठनं गजमुजङ्गमयोरपि बन्धनम् ।

मतिमत्तां च विसोक्य दरिद्रतां विधिरहो बसवानिति मे मति ॥१२॥

बाँद और मूरज को ग्रह से पीड़ित हाथी और मीप को बन्धन में (बधा हुआ) तथा बुद्धिमान व्यक्तियों को दीन देवकर मेरा तो यही मत है कि भाग्य ही बसवान् है ॥१२॥

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणं भुव ।

तदपि तत्क्षणभङ्गि पराति चेदहह कष्टमपरिहृतता त्रिषे ॥१३॥

अरे ! यह दुःख की बात है और प्रज्ञा की भूलतता (दिवाती) है कि (बहु पहलु से) समस्त गुणों के बीच म्य पुरुषरत्न की उत्पत्ति करता है, तब भी उसे क्षणभंगुर बना देता है ॥१३॥

पत्रं नव यदा करीरत्रिष्टपे दोषो वसन्तस्य कि ।
 नोसूत्रोऽप्यत्रलोकत्रे यदि दिवा मूर्यस्य किं दूषणम् ॥
 धारा नव पतन्ति घाननमुग्धे मेपस्य किं दूषणम् ।
 यत्पूर्वं विधिना सप्ताटसिखितं तमाजितुं न क्षम ॥६४॥

भाम्य मे पहन ही जो सप्ताट में लिख दिया उसे मिटाने में क्षीन समर्थ है ? (क्योंकि) यदि करीर नामक वृक्ष में पत्ते नहीं आने तो (इसमें) मधुमास का क्या दोष यदि दिन में भी उल्टू नहीं देग पाता तो (इसमें) सूय का क्या दोष; (और) अगर चातक के मुह में जन की धारण नहीं गिरती तो (इसमें) बादल का क्या दोष ॥६४॥

अथ कर्मप्रशंसा

ममस्यामो देवान्नु हतविधेस्तेपि वशगा
 विधिवन्ध सोऽपि प्रतिनियतकर्मफलद ।
 फलं कर्मयुक्तं किममरगणं किं च विधिना
 नमस्तत्तमम्यो विधिरनि न येन्यःप्रभवति ॥६५॥

हम देवताओं को प्रणाम करते हैं, (परन्तु) वे भी भाम्य के शग में हैं । (अतएव) विधात्रा (ही) वन्दनीय है । (पर) वह भी पूर्व निश्चित कर्म के अनुसार फल देता है । फल (तो) कर्म के अर्पण है, देवताओं और भाम्य से क्या (प्रयोजन) ? (अतः) कर्म को नमस्कार है जिससे भाम्य भी पार नहीं पाता ॥६५॥

ब्रह्मा येन नुसालवप्रियमिनो ब्रह्माण्डमाण्डोदरे ।
 त्रिप्युर्णेन दशावतारगहने तिमो महासंकटे ॥

इन्द्रो येन कृपासपाणिपुटके मिधाटनं कारित ।

सूर्यो भ्राम्यति नित्यनेव गगने तस्मै नमः कर्मणो ॥६६॥

उस कर्म को नमस्कार है जिसने ब्रह्मा को कुम्हार की तरह निरन्तर
ब्रह्माण्ड-रचना में प्रवृत्त किया जिसने विष्णु को बार-बार उस अवतार
मेने की आफत में डाल दिया जिसने रुद्रस्वरूप शङ्कर को हाथ में कपास
सेकर भीत माँगने के लिए बाध्य किया और जिसने सूर्य को नम में सदैव
अमण करने पर विवश किया ॥६६॥

नीवाकृति फसति नीव भुसं न शीसं ,

बिद्यापि नीव न च यत्नकृत्वापि सेवा ।

भाग्यानि पूर्वतपसा खनु सञ्चितानि ,

नामे फसन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षा ॥६७॥

पहले की तपस्मा से उपाजित भाग्य ही समयानुरूप मनुष्य को वृक्ष
की तरह फल देता है । पुण्य को न ठो रूप न परिवार, न सद्यचार,
न विद्या और न यत्नपूर्वक की गई सेवा ही फल देती है ॥६७॥

घने रणे शुभ्रु जस्राग्निमघ्ये

महाणवे पर्वत मन्त्रके वा ।

सुप्त प्रमत्त विपमस्विष्ठं वा

रक्षन्ति पुण्यानि पुरापृत्तानि ॥६८॥

पूर्व जन्म में किये गये सत्कर्म ही घन में युद्ध में शत्रु पानी और
आग के बीच में महासागर में अथवा पहाड़ की चोटी पर, असावधानी
के होने से अथवा विद्वत् स्थिति में (परम की) रक्षा करते हैं ॥६८॥

या साधुश्च खलान्करोतिविदुषो मूर्खान्हितान्द्रैपिण ।
 प्रत्यम क्रुदने परोक्षममृतं हालाहलं तत्क्षणात् ॥
 तामाराधय सत्स्त्रिया भगवतीं मोक्तुं फलं वाञ्छितम् ।
 हे साधो व्यसर्नगुणेषु विपुलेष्वास्यां कृष्या मा कृष्या ॥६६॥

हे सज्जन ! यदि अभीष्ट फल का भोग करना चाहते तो उस भगवती सत्स्त्रिया की पूजा करो जो दुष्टों को साधु बना देती है और मूर्खों को विद्वान्, शत्रुओं को मित्र अप्रत्यक्ष को प्रत्यक्ष और जहर को जम्बूत बना देती है। कष्टों से पूर्ण बहुत सारे गुणों में व्यर्थ बिश्वास मत करो ॥६६॥

गुणवद्गुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ
 परिणतिरवधार्या यत्नतः परिहृतेन ॥
 धतिरभसकृतानां कर्मणामाधिपते-
 भवति हृदयदाहो शल्यतुल्यो विपाकः ॥१००॥

बिना-सोचे विचारे बहुत जल्दी में किए गये काम का फल मृत्यु पर्यन्त हृदय को काटि के समान सन्तप्त करता है। (अत्रएव) कर्मठ बुद्धिमान् व्यक्ति को कार्य के दुरु में (ही) परिणाम बन विचार यत्नपूर्वक कर लेना चाहिए, पाहे (वह कार्य) उन्योगी हो या अनुपयोगी ॥१००॥

स्यान्यां वैदूयमय्यां पवति च सगुनं चादनरिन्धनीर्घं ।
 सौवर्णैर्लाङ्गलाप्रैर्विसिगनि वमुधामरंभूसस्य हेतो ॥
 दित्वा वपूरगण्डान्वृनिमिह पृश्ने षोड्रवागां समंता-
 त्प्राप्येमां कमभूमिं न धरति मनुजो यस्तपो मंदनाय ॥१०१॥

इस कर्मसूत्रि (संसार) में धाकर जो अमागा उपस्था (साधना) नहीं करता वह मानो मरतत मयि के पात्र में सदसुत को बन्दन की लक्ष्मी से पकावा है, सोने के हल से लेव को धाकर के पोथे के लिए जोवता है, (और कोदो (एक निम्न कोटि का साधक) के पाठे ओर कसूर के दुग्धे कष्टकर पेट बनावा है ॥१०१॥

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं

शशुञ्जयतशह्वे ।

वाणिज्यं कृपिसवनादिसवसा

विद्या यत्सा शिक्षतु ॥

भ्रातारां विपुस प्रयातु स्रगवत्

कृत्वा प्रयत्नं परं ।

नामाभ्यं भवतीह्यकर्मवशतो

भाष्यस्य नाश कुत ॥१०२॥

इस संसार में अनहोनी बात कहाँ होती (और) कम के अधीन जो होना ही है उसका अन्त (भी) कहाँ ? पाढ़े (कर्मगति को टालने के लिए) जन्म में दूब जाओ या सुमेरु की खोटी पर चढ़ो या बुद्ध में दुस्मनों के पीत लो या व्यापार, लेखी और सवा-कार्यादि सभी विघाषों और कर्माषों को सीग लो (और) पाढ़े विम्बुस आत्मरा में बिड़ियों की लच्छे बड़े आयास से बिपरख करो ॥१०२॥

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानं ।

सर्वो जन सुजनतामुपयाति तस्य ॥

कृत्स्ना य भूमवति सन्निधिरत्नपूर्णा ।

यस्यास्ति पूवसुकृस्तं विपुलं नरस्य ॥१०३॥

जिस व्यक्ति के पास पूर्व जन्म का बहुत सा पुण्य हो उसके लिए भयङ्कर जंगल घण्टड़ा नगर बन जाता है, सभी लोग उसके सुहृद् हो जाते हैं तथा उसके पास की सारी सुविधाएँ खर्चा से भरी-पूरी हो जाती हैं ॥१०३॥

को लाभो गुणिसङ्गम किमनुर्व-

प्राजेतरं सङ्गति ।

वा हानि समयच्युतिनिपुणता

वा धर्मतत्त्वे रति ॥

न दूरो विप्रितेन्द्रिय प्रियतमा

पादुप्रता किं धनं ।

विद्या किं सुखमप्रयासगमनं

राज्य किमाज्ञापसम् ॥१०४॥

साम किस में है ? गुणी लोगों के सम्पर्क में । दुःख क्या है ? मूर्खों का । हानि क्या है ? दक़्त पर चूक जाना ! दसता क्या है ! धर्म-आसक्ति । दृग्धीर कौन है ? शत्रुओं पर विजय पाने वाला । प्रे-कीन है ? अपने अनुग्रह रहने वाली । धन क्या है ? विद्या । सुख है ? परदेश न जाना । राज्य क्या है ? अपनी हठमत्त ॥१०४॥

मासतापुमृमम्बेव द्वे गतीह मनम्बिन ।

मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य शोषते वन एव वा ॥१०५॥

इस प्रकार में मनम्बी जनों की माननी पुत्र के सरग दो गतिव है—वा तो सब लोगों का सम्पर्क पर अपना जर्मल में ही निर

(अर्थात् मनस्वी भोग या तो संसार में मरा की पराकृष्ठा पर रहेंगे या फिर वनवास ग्रहण करेंगे) ॥१०५॥

अप्रियवचनदरिद्रं प्रियवधनाह्वयै स्वदारपरितुष्टं ।

परपरिवादनिवृत्तं क्वचित्क्वचिन्महिता वसुधा ॥१०६॥

पृथिवी ऐसे लोगों से कहीं-कहीं (बहुत कम) अलंभित होती है (जो) कटु वचन बोलने में दखि अपनी पत्नी से (ही) एत (तथा) पर-निन्दा करने में अनासक्त होते हैं ॥१०६॥

कदर्पितस्यापि हि धैर्यवृत्ते-

न शक्यते धैर्यगुण प्रमाष्टुम् ॥

अधोमुखस्यापि कृतस्य वद्वे-

र्नाघ शिला याति कदाचिदेव ॥१०७॥

दुःस में पढ़ने पर भी धैर्यवाम् पुरुष की धीरता बने (बनेई) दूर नहीं कर सकता । (क्योंकि) अधोमुख होने पर भी आग की सपट नीचे नहीं जाती ॥१०७॥

यान्ताबटाक्षविश्रिता न दहन्ति यस्य ।

चित्त न निर्दहति कोपकृयानुताप ॥

अपन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाश-

सौत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीर ॥१०८॥

तीनों लोभों को जीतने वाला (वास्तविक अर्थ में) धैर्यवाम् पुरुष यह है जिसके मन को क्रामिनियों के कटाणस्पी तीर बेपते नहीं, जिसके

बिल को श्रेयस्वी अग्नि की आँच जसाती नहीं (घौर) जिसको मोम के फन्दे से कभी भोग-विनास सींच नहीं पाते ॥१०८॥

एकेनापि हि धूरेण पादाक्रान्तं महीतलम् ॥

क्रियते भास्करेणैव परिस्फुरिततेजसा ॥१०९॥

जैसे अकेला सूर्य (सारे संसार में) प्रकाश प्रस्फुटित कर देता है (वैसे ही) अकेला मोखा सारी पृथिवी को अपने पैरों के नीचे (अधीन) कर लेता है ॥१०९॥

वद्विस्तस्य जसामते जसनिधि

कृत्यायते तत्क्षणा-

न्मेष स्वल्पशिलायते मृगपति

सद्यः कुरङ्गायते ॥

व्यासो माल्यगुणायते विपरसः

पीयूषपर्पायते ।

यस्याङ्गैः क्षितसोऽबन्धमतमं

शीलं समुमीलति ॥११०॥

जिस मनुष्य के अङ्ग में (व्यक्तित्व में) सारे संसार को अन्धता लगाने वाला सदाचार प्रस्फुटित होता है उसके लिए आग (भी) पानी बन जाता है सुमेरु पर्वत छोटी शिला का रूप धारण कर लेता है शेर तुरन्त हिरन बन जाता है, (सया) पहर अमूठ की बर्षा की तरह हो जाता है ॥११०॥

सज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा-
 मस्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमानाम् ।
 तेजस्विन सुसममूनपि संत्यजन्ति
 सत्यव्रतव्यसनिनो न पुन प्रतिशाम् ॥१११॥

तेजस्वी तथा सच्चाई का द्रव्य कारण करने वाले पुरुष प्राण भासानी से वे घेते हैं पर सज्जा भादि गुणों के समूह को पंदा करने वाली अपनी माँ की तरह शुद्ध हृदय वाली और अपने अधीन रहने वाली प्रतिज्ञा को नहीं छोड़त ॥१११॥



शृङ्गारशतकम्

संगतावरणम्

शम्भुस्त्रयंमुहरयो हरिणेक्षणानां
 येनाश्रित्यन्त सततं गृहन्मदासा ।
 धानामगोवरधरित्रिविचित्रताय
 तस्मै नमो भगवते ऋसुमायुषाय ॥१॥

उन पुण्यायुष भगवान कामदेव को नमस्कार है जिसने शिव ब्रह्म और विष्णु को (भी) तिर्यों के कार्य—अर्थात् सृष्टि, पालन-पोषण आदि—करने के लिए निरन्तर दास बना रखा है और जिसका चरित्र (काय बलाप) अनिर्बचनीय होने के कारण विजदाण है ॥१॥

स्मितेन भावेन च सञ्जयाभिया
 पराद् मुग्धरदकटाक्षवीभर्ण ।
 धवोमिरीप्यावसहेन सीसया
 समस्तभावं तनु यन्धनं धिय ॥२॥

मन्द-मन्द मुखाना, शर्मिता भयभीत होता मुग्ध फेर सेना अर्द्ध कटाक्ष से देखना (अर्थात् अनश्रितियों से देखना) मगुर वचन बोधना ईर्ष्या

द्वेष के कारण बख्ख बरना और अनेक प्रकार के अभिनय करना (लोक-
भाषा में मखरे करना)—इन सभी माय मन्त्रिमाओं के प्रदर्शन के कारण
रितियाँ निश्चय ही बम्बन स्वरूप होती हैं ॥२॥

ध्रुवातुर्याकुञ्चितताक्षा कटाक्षा
स्निग्धा वाचो सज्जिताश्चेव हासा ।
सीलामन्दं च स्थितं प्रस्थितं च
स्त्रीणामेतदसूपणं चायुधं च ॥३॥

मीठे केरने की कुशलता के कारण भिन्ने हुए नेत्रों से कटाक्ष करना
स्नेहपूर्ण बातें करना शरमा कर हँसना बेनि करते हुए मन्द-मन्द खजना
मठ उस आभा और मठ चल पड़ना—यही रितियों के अजडार भी हैं और
यही शक्त भी हैं । (अर्थात् इन्हीं मायाँ स रितियाँ पुरुषों को आकर्षित करती
हैं और इन्हीं स उनका शिमार भी करती हैं) ॥३॥

फचिदमुभ्रभ्रंर्गं फचिदपि च सज्जापरिणतं
फचिदमीनित्रस्तं फचिदपि च सासाविलसितं ।
नवोढानानेभियदनकमलर्लनेत्रचक्षित
स्फुरन्नासाब्जानां प्रवरपरिपूर्णा इव दृश ॥४॥

नवविवाहित रितियों के मुद्रप्रमल में स्थित (अमर रूपी) नेत्र जो
बभी भीर्नों से कटाक्ष करते हैं बभी मजा स विमग्नित होते हैं बभी मय
भीत रहते हैं और बभी लीला से ही विलासों को पारण करते हैं बीज
कमल के समूह-स प्रतीति होते हैं ॥४॥

यत्र चन्द्रविवासि पद्मजपरिहासभमे सोचने ।
वण स्वर्णमपावरिष्णुरसिनाजिष्णु मचान्नाश्रय ॥

यक्षोजाविभनुम्मसंभ्रमहरो गुर्वी नितम्बम्यली ।

वाचां हरि ख माद्वैव युवतिपु स्वाभाविकं मण्डनम् ॥५॥

चन्द्रमा को फीरा करने वाला मृग कमल का उपहास करने में समर्थ नेत्र स्वच्छ की कान्ति को मन्द करने वाला रूप भ्रमर-पुच्छ को पीतने वाले बेरा गजमस्तक की शोभा हरने वाले कुच-कृम्म और विद्याल मारी नितम्ब तथा मन को हरने वाली कोमल घाणी—ये सब युवतियों के स्वभाविक भूषण हैं ॥५॥

स्मितं निश्चिद्वक्ष्ये सरलतरलो वृष्टिविभव ।

परिष्यन्दो याचामभिनवदिलासोक्तिसरस ॥

गतीनामारम्भ क्षिसलयितलीलापरिभर ।

सृष्ट्यास्तास्यैयं विमिह न हि रम्यं मृगदृश ॥६॥

सौवन आते ही मृगनयनी खियों में क्या-क्या हाव नाव नहीं उत्पन्न होते—मृग में मन्द मन्द मृगजान भीषे और चञ्चल नेत्रों में बेनि नयी-नयी विलास भरी उच्छ्रियां में रमणाल बातें मय कमल-पत्र के समान ध्रुव और लीलाभरी गति—सभी आ जाते हैं ॥६॥

द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशां प्रेमप्रसन्न मुर्वी ।

घ्राणध्यर्ष्वपि किं तदास्यपवन ध्याव्येषु किं तद्वच ॥

किं स्वाद्येषु तदोष्टान्नवरस सृष्टेषु किं तत्तनु-

र्ष्यै किं नयपावनं मुहृदय सवत्र तद्विभ्रम ॥७॥

खियों के लिए (न्द्रियजन्य गुणा में) उत्तम क्या-क्या है? देखने योग्य वस्तुओं में मृगनयनी (खियों क्यथा नायिकाओं) का प्रेम से प्रचलित

मुच सू धने श्री वस्तुओं में उनका उच्छ्वास सुनने की वस्तुओं में उनकी वाणी स्वाद मने योग्य वस्तुओं में उनके अघरपङ्खों का रस स्पर्श की वस्तुओं में उनका शरीर और ध्यान करने योग्य वस्तुओं में उनका जीवन और सतत विलास ॥७॥

एता स्तसद्बलयसंहतिमेतस्योद्य-
 म्भकारनूपुररयाहत राजहंस्य ।
 कुर्वन्ति नस्य न मनो विवशं तस्यो
 विप्रस्तमुग्धहरिणीसदृशं पटाक्षं ॥८॥

ऐसी युवतियाँ मयमति और मुग्ध हरिणी के समान बटाक्ष करके किस का मन नहीं हर लेतीं जिनके चक्षुस कटुणों के शब्द दुद्रपण्डित की ध्वनि और नूपुर के म्भार ने राजहंसिनियों की बाल पीत सी है ॥८॥

कु कुमपंक्तसंमितदेहा गौरपयोधरवम्भितहारा ।
 नूपुरहंसरणतनदपया कं न वशीमुखे भुवि रामा ॥९॥

ऐसी सुन्दरी पृथिवी पर जिसको अपने वय में नहीं कर लेती जिसका शरीर बेनार और चन्दन के मय से सुशोभित है, जिसके गौर उदरों पर हार विसहित होता है और जिसके चरणकमलों के नूपुर राजहंस के सदृश ध्वनि करते हैं ॥९॥

नूनं हि ते भविवरा विपरीतं योधा
 ये निरयमाहुरवसा इति यामिनीनाम् ।
 यामिबिसोसतरतारवदृष्टिपार्त
 शशादयोऽपि विजितास्त्वयसा वर्षं सा ॥१०॥

वे कविशिरोमणि निदचय ही जस्ती बुद्धि बाने हूँ जिहोनि खियों को सन्ध अवता बन्हा है । ब मझा अवता कसे है जिनकी अश्रवण पुसलियों के बटास से इन्द्रादि भी हार मानत हूँ ॥१०॥

नूनमाणावरस्तस्या मुञ्चुवो मकरव्यज ।

यसस्तन्नेप्रसंचारमूचितेषु प्रवतते ॥११॥

कामदेव निदचय ही उनका (सी का) आजाकारी संवक है, क्योंकि जिस पर व आँसों से शशास कर बती हूँ उरी को वह (कामदेव) बरा में कर मता है ॥११॥

केया संयमिन श्रुतेरपि परं पारं गते सोचने ।

अन्तवक्त्रमपि स्वभावगुणिभि कीणं द्विजानां गणं ॥

मुक्तानां सतताधिवासरुचिरं वक्षोजनुम्मद्वय-

मित्यं तन्त्रि वयु प्रयांतमपि ते क्षोमं करोम्येव न ॥१२॥

हे सन्वंगी ! तैरा शरीर शान्तम्बरूप होने पर भी मुझ में तो अनृणग ही उत्पन्न करता है, (क्योंकि तरे) केया संयमित हैं (क्रिष्ट अर्थ—संयम का पामन करते हैं) मेत्र (बिगाम होने के कारण) कर्ना को पार कर गये हैं (क्रिष्ट अर्थ—धृति' अर्थात् केनादि में पायकृत है) प्रकृतत पवित्र दन्त पक्षि से मुग का आन्तरिक भाग ब्याप्त है (क्रिष्ट अर्थ—स्वभाव से पवित्र द्विजानां' अर्थात् शाहजों के समूह से ब्याप्त है), दोनों स्तन-कनरा मौठियों के निरन्तर पास रहने से मुरोमित हावे हैं (क्रिष्ट अर्थ—मुक्तानां' अर्थात् मुक्त या विरक्त जनों के निरन्तर पास रहने से मुरोमित होता है) ॥१२॥

मुग्धे धातुप्लता केवमपूर्वा त्वयि दृश्यते ।

यथा हृत्सि घेतासि गुणैरेव न सायकं ॥१३॥

हे सुन्दरी ! तरी यह अनुविद्या में कुरामता बैसी अद्भुत वीर्य पड़ती
[जो मन के गुणों से (अर्थात् (१) धार्मिक विशेषताओं से अथवा (२)
रम्यता से) ही बंधि देती है (बाण की आवश्यकता नहीं पड़ती) ॥१३॥

सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु तारारवीन्दुषु ।

विना मे मृगशावाश्या तमोमृतमिदं जगत् ॥१४॥

दीपक अग्नि तारे, सूर्य और चन्द्रमा—इन सब के होने पर भी एक
मृगनयनी सी विना यह संसार मेरे लिए अन्धकार स्वल्प है ॥१४॥

मद्वृत्त स्तनमार एष तरले नेत्रे चले भ्रूजते ।

रागाधेषु तदोष्ठपद्ममिदं कुवन्तु नाम व्ययाम् ॥

सौभाग्याक्षरपङ्क्तिरेव लिखिता पुष्पायुधेन स्वयं ।

मध्यस्थापि करोति तापमधिकं रोमावली केन सा ॥१५॥

यह तुम्हारे वसु साधार स्वर्णों का भार चक्षुष नयन चपल भ्रूमणा
यह अक्षरपद्म आदि प्रेमान्व जनों को पीड़ा दे ती वे क्योंकि वामदेव के
हृदय की सिंगी (तिरे मस्तक में) सौभाग्य के अक्षरों की पंक्ति ही है परन्तु
मध्यस्थ रोमपंक्ति जो अधिक सन्ताप देती है, वह क्यों ? (संग्यार्थ—उग्रत
चक्षुष तथा रागयुक्त वस्तुएं जो व्यथा देती हैं वह तो संगत ही हैं, परन्तु
मध्यस्थ—अर्थात् जिनमें वायं क्यहादिजनिष्ठ पुष्प से निवारण करना
है वह जो सन्ताप देता है सो विपरीत है) ॥१५॥

गुण्णा स्तनभारेण मुगधम्त्रेण भाम्बता ।

एनैश्चराम्नां पादाम्नां रंजे ग्रहमयीष सा ॥१६॥

बह (ती) ऐसी मुगोमिन होती है मानो वह वहाँ से युक्त हो क्योंकि
उरोओं के भार के कारण वह गुरु के सदृश है (साधारण धर्म में उसके

कृष्ण-कृष्ण अत्यन्त कठोर तथा भारी हैं, शिष्ट अर्थ में वह वृहस्पति के के समान है), शीतिमान मुख के कारण वह चन्द्रमा जैसी है (साधारण अर्थ में उसका मुख चन्द्रमा के समान है शिष्ट अर्थ में वह चन्द्रमा मामक ग्रह से सुरोमित है) तथा मन्दगामी चरणा के कारण वह शनि नामक ग्रह के सदृश है ॥१६॥

तस्या स्तनी यदि घनी जपनं विहारि ।
 यत्र च धारु तव चित्तं किमाकुलम्बम् ॥
 पुण्यं कुक्ष्य यदि तेषु तवास्ति वाञ्छा ।
 पुण्यैर्विना न हि भवन्ति समोहितार्थाः ॥१७॥

यदि उसके (अभिनी के) उरोज कठोर हैं यदि उसका जपन-प्रवेश रमणीय और उसका मुख सुन्दर है तो (उन्हें देखकर) हे मन ! तू क्याकुल क्यों होता है ? यदि तेरी उनमें आसक्ति है तो पुण्य-कर्मों का अनुसरण कर, क्योंकि बिना पुण्य के अभीष्ट की सिद्धि नहीं होती ॥१७॥

मात्स्यमुत्साय विचार्यै धार्यै-
 मार्या समर्यादिमिदं यदन्तु ।
 सेव्या नितम्बा किमु भ्रूचराणा
 भुतम्मरस्नेरविलासिनीनाम् ॥१८॥

हे सज्जनो ! मत्सर से मुक्त होकर तथा मर्यादा या ध्यान रखते हुए विचारपूर्वक यह बसाइय कि पक्षियों के ही नितम्ब (मध्य भाग) सपन करने योग्य हैं (अर्थात् धारम्य धारण करने ही योग्य है) अथवा काम देव के हाथ-भाय न मृगराजी हृद्दि कामिनियों के नितम्ब ही उन्मोग्य हैं (अर्थात् प्रेम शृङ्गार का ही माग करता है) ॥१८॥

प्रेमाद्रिं स्पृहणीयनिर्भररहः प्रीठाप्रगल्भा सतो ।

नि दाकाङ्गविकर्षणादिकस्तुल्यं रम्यं कृसस्त्रीरसम् ॥२५॥

वस्तुतः कृसस्त्री से ही समागम रमणीय होता है, (क्योंकि) वह पहले से एक बार नहीं-नहीं करती है (अर्थात् अत्यधिक सख्ता का अभिनय करती है) फिर बिसास की कामना जागृत करती है, फिर भक्षा से शरीर को शिथिल कर देती है, उसके अनन्तर अधीर हो उठती है फिर प्रेम से भीगे हुए अन्यन्त प्रिय एकान्त-विलास के लिए सखा (एकदम) छोड़ देती है और फिर मित्राङ्ग होकर अङ्गों के बलपूर्वक कर्मण आदि में मुक्त आनन्द लेती है ॥२५॥

उरसि निपतितानां सस्तधम्मिल्लनानां

मुकुसिननयनानां पिचिदुन्मीलितानाम् ।

सुरतजनितखेदस्त्रिगणहस्यसीना-

मनरमधुवधूनां भाग्यवन्त पिचन्ति ॥२६॥

ऐसी स्त्रियों के अक्षर मधु का पान भाग्यशापी पुरुष ही कर पाते हैं जो (रति के समय) बदन-स्पर्श पर लेट जाती हैं जिनके सुगन्धित केरा बिगड़ जाते हैं जिनकी कलियों की छरह गिनी हुई आँगों अधमुदी रहती हैं और जिनके कपोलों पर सम्मोग से उत्पन्न धम-सीपर छलन पड़ते हैं ॥२६॥

आमीलितनयनानां यः सुरतरसोज्ज्वलविदं पृरते ।

मिर्गुर्नमियोवधारितमवितथमिदमेव कामनिर्वहणम् ॥२७॥

यस्तुतः वही पुण्य काम-वासना का मयेष्ट निर्वाह कर पाता है जो अपमृदी आँगों वाली स्त्रियों से परस्पर समागम करके उन्हें रति-विलास की वृत्ति प्रदान करे ॥२७॥

गीष्पश्रुतु में मृकर्म करने वाले लोग इन सभी वस्तुओं से आनन्द उठाते हैं—मोहक मुगन्यों वाली माला पंखे की हवा चांदनी पूर्यों का पराग सरोवर, चन्दन की धूमि उज्ज्वल मद्यिग राजप्रासाद की शुभ छत मीना बत्त और कमलनयनी तिरियाँ ॥३६॥

सुधाशुभ्र घाम स्फुरदमलरक्षि शशवर

प्रियावल्गनामोजं मलयजरजश्वाति मुरमि ।

स्रजो हृद्यामोदास्त्वदिदमखिलं रागिणि जने

परोर्यन्त- क्षोभं न तु त्रिपयसंसगविमुखे ॥४०॥

पूनाश्रुति के कारण उज्ज्वल शूद्र विमल किरणों वाला उत्कट चन्द्रमा प्रेमशी का मृगकमल अतिराम्य मुगन्यों वाली चन्दन मन को प्रसन्न करनेवाली मुरमित पूर्यों की माला—य सभी वस्तुएँ अनुरक्त पुर्या की तो विदग्ध्य कर देती हैं परन्तु त्रिपय-वासनाओं से पराङ्मुख सौगों को नहीं ॥४०

अथ वर्षासमयः

तरुणी चपा दीपितकामा विवसितजाती पुष्पनुगायि ।

उपतपीनपयोधरभारा प्रावृट् फुल्ले वस्य न हपम् ॥४१॥

वर्षाः की यह ठण्डी वासना को उदात्त करके पुरी की मुगन्य तथ उपत मेवा (तरुणी के पक्ष में उरोजों) के भार से बोनिस्त होकर विव प्रमृदित महों करती ॥४१॥

विदुताचिनमेवं भूमय चन्द्रसिंशा

नयपुटजकदम्बामोदिनो गचवाहा ।

शिक्षिकुसकलत्रेवारावरम्या वनान्ता

सुस्निग्धसुस्निग्धं वा सर्वमृत्कण्ठ्यन्ति ॥४२॥

सुपी तथा दुन्डी सभी लोगों को बारिदों से व्याप्त आभारा कन्दलों से भरी पुष्पी नये-नये घुटज और कदम्ब के फूलों से सुगन्धित पवन और मौसों के झण्ड के चलन से रमणीय वन-प्रवेश उत्प्रेरित कर देते हैं ॥४२॥

उपरि घनं घनपटलं त्रियग्निरयाऽपि नक्षिसमधूरा।

धमुषा वन्देधवसा सुष्टि पश्चिक् क यानु संनस्त ॥४३॥

ऐसे समय में विरही पशिक कैसे घन रहे जब ऊपर तो घनेरे बादल रास्ते में नाचते हुए मोर और कन्दलों से भरी पुष्पी हैं (अर्थात् जब सभी बिच्छू को उदीप्त करने वाले उपकरण उपस्थित हैं तो पशिक सुपी कैसे रह सकता है ॥४३॥

इतो विद्युदस्ती विससितमित केतवितरो

स्फुरद्गद्य प्रोद्यज्जसदनितदस्फूर्जमित ।

इत केविक्रीडावसवसरव पदमसदृशां

कथं मास्यन्त्पेते विरहदिवसा संभृतरसा ॥४४॥

वर्षों में तियां बिच्छू के दिनों को कैसे बितायेंगी जब कहीं तो बिजली की छटा का विलास है और कहीं उत्प्रेरक सुगन्धों वाले बैठनी के बुल हैं कहीं जल से मोत-श्रेष्ठ भासत गर्जन कर रहे हैं और कहीं मयूरों के विलास की कलकल-ध्वनि गुंज रही है ॥४४॥

धमुषासंसारे समसि नमसि प्रौढजसद-

ध्वनिप्राप्ते सस्मिन् पतितदृपदानीरनिषये ।

सी-सी शब्द उत्पन्न करत हैं जोनी से रहित बसन्त्यन पर स्तनों में रोमाञ्च पदा करत हैं नाथों को कम्पित करत और स्तन जयन-प्रवेश स बत्तों को हटा बते हैं ॥८८॥

केशानाकलपन्टयो मुमुलपन्नासो वलादाग्निपा-
 शानन्वन्पुलकोद्गमं प्रकटयन्नालिंग्य कम्पञ्चन ॥ -
 वारंवारमुदारसौमृतकृतोदन्तञ्चदानोडय-
 न्नाय शशर एष संप्रति मरुकांतासु वातायते ॥१०॥

शिशिर का पवन इस समय पवि का सा आभरण करता है (क्योंकि यह कामिनिजों के) बाजों को विलम्ब और आँधों को मुकुलित करता है, बसन्त्यन से बस उड़ा देता है और शरीर को रोमाञ्चित कर देता है, आत्म्य दाय कम्पन उत्पन्न करता और बार-बार सी-सी करते हुए होठों को सताया करता है ॥१०॥

असारा सन्स्वेते विरतिविरसायासविषया
 जुगुप्सन्ता यद्वा ननु सकलदोषास्पदमिति ।
 तयाप्यन्तन्तत्त्वे प्रगिहितधियामप्यतिवस-
 स्तदायोऽनात्म्येयस्फुरतिहृदयेकोऽपिमहिमा ॥११॥

यदि भोग विषय-आत्मनामों की साखीन विरक्ति से विमुक्त करने वाणा तथा मनी दोषों का घर मुमन्तर निन्दा करें ठब भी इनकी बड़ी महता है (क्यारि) ये उनके हृदय में भी प्रकट होती हैं जिनकी शुद्ध अनियतनीय श्रद्धा चिन्तन में स्थिर हो गई है ॥११॥

अयन्तो यन्तप्रगिहितधियामामगुरवो
 विदग्धासातानां वयमपि क्वानामनुवरा ।

तयाप्येतद्भूमौ नहि परिहितात्पुष्पमधिव'

नचास्मिन्वसारे कुमलयहरो रम्यमपरम् ॥५२॥

आप उन मोगों के श्रेष्ठ पुरु हैं जिनकी बुद्धि वेद-वेदान्त में स्थिर हो गई है और हम भी काव्यशास्त्र के विषय में वातार्त्ताप करने वाले कवियों के अनुयायी हैं फिर भी इस जगत में परमार्थ से बढ़कर दूसरा पुण्य नहीं है और न ही कामसनयनी तियों से बढ़कर कोई सुन्दर वस्तु (अर्थात् या आपकी मानना ही पड़ेगा) ॥५२॥

किमिह बहुमिदं युक्ति शून्यो प्रसापै-

द्वयमिह पुर्याणां सर्वदा सेवनीयम् ।

अभिनवमदस्तीलासासस सुन्दरीणां

स्तनभरपरिलिप्तं यौवनं वा धनं वा ॥५३॥

इस संसार में अर्थहीन बहुत प्रसाप करने से क्या प्रयोजन ? यहाँ तो मनुष्यों के लिए सदा सेवन करने योग्य केवल दो वस्तुएँ हैं—एक तो प्रपुत्र उन्माद के कारण बेनि-विश्वास की अभिभाषी तथा उद्योगों के मार से क्लान्त सुन्दरियों का यौवन ही जबका वन ही ॥५३॥

अथ विवरक्त बरणम्

सख्यं जना धम्मि न पशपातान्तोऽपु सर्वेषु च तथ्यमेतन् ।

नाय मनोहारिनिवन्धनीम्या दुर्गन्धहेतुन चरिषदन्त्य ॥५४॥

हे पुरुषो ! मैं बिना पशपात रिये राब कइता हूँ कि यह तथ्य सभी लोगों को विदित है कि अच्छे निवन्धनों वाली तियों के समान न तो कोई भीरु रमणीय है और न दुर्गन्धों की वजह ही ॥५४॥

शाम्भुजोऽपि प्रविसृजिनयोऽप्यात्मबोधोऽपि माळ
संसारोऽस्मिन् भवति विरलो भाजनं सद्गतोनाम् ।
येनैतस्मिन्निरयनगरद्वारमुदघाटयन्ती
वामाक्षाणां भवति कुटिलभ्रूसता कुञ्चिकेव ॥६२॥

इस संसार में कोई शाम्भुज प्रराम्भुज बिनय वाला और ज्ञानी मने ही
क्यों न हो परन्तु सद्गति का पात्र बिरला ही पुरुष होता है क्योंकि सुन्दर
नेत्रों वाली स्त्रियों की विरही भीहूँ मरक के दरवाजे को कुञ्ची के समान
खोल देती हैं ॥६२॥

कृष्ण काण खञ्ज श्रवणरहित पुच्छविकलो
व्रगी पूयकिसन्न कृमिकुलगतैरावृततद्गु ।
धुषाभ्रमा जीर्ण पिठरजकपालार्पितगल
गुनीमन्वेति श्वा हतमपि निहन्त्येव मदन ॥६३॥

कामदेव मरे हुए को भी मारता है, क्योंकि दुबल काने भंगड़े-
बाहिरे, पुच्छविहीन ऐसे मनुष्य जिसके पाद में राध भरी हो और शरीर
पर संकटों कीड़े व्याप्त हों तथा भ्रूज स अर्जर कृद्ध पुरुष (इनमें स किसी
को भी कामदेव नहीं छोड़ता (यहाँ तक कि) ऐसा कृत्ता भी कृत्विया का
पीछा करता है जिसके गले में मिट्टी के घड़े का कण्ड पड़ा हुआ है ॥६३॥

स्योमृदां न्यरुष्टनस्य अननो सर्वासम्पत्सरीं
ये मृठा प्रविहाय माति कुधियो मिष्माफलान्येपिग ।
से तेनैव निहन्य निदयतरं नग्नोवृत्ता मुण्डिता
केविन्मन्वियित्वाकृत्वाश्च जटिला मानालिकाश्चापरे ॥६४॥

इह हि मधुरगीतं मृत्यमेतद्रसोज्यं
 स्फुरित परिमसोऽसौ सारं एषस्तनानाम् ।
 इति हतपरमार्थेन्द्रियैर्भ्राम्यमाणो
 स्याद्विहरणदक्ष पञ्चभिवञ्चितोऽसि ॥८७॥

हे मनुष्य ! परमार्थ नष्ट करने वाली भ्रमंगलकारिणी पाँचों इन्द्रियों (अथर्वाँस जीम नान और स्वप्ना) ने कमरा तुम्हें घूम-घुमाकर ठग लिया है । (जिससे तुम्हें लगता है कि) यह मीठा संगीत है यह मुरख है, यह स्वाद की वस्तु है, यह मुरख बिसरित हो रही है और यह स्तनों का सुख स्पर्श है ॥८७॥

न गम्यो यत्राणां न च भवति भयंज्यविषयो
 न घानि प्रध्वंसं प्रवृत्ति विविधं शान्तिवर्धत ।
 भ्रमापेशादङ्गे किमपि विदधन्मध्यमसमं
 स्मरोऽस्मारोऽयं भ्रमयति हरां पूणयति च ॥८८॥

यह कामदेव लयी मिरली न तो मन्त्र-साध्य है न इसकी दवा हो सकती है और न यह संकड़ों शमन के साधनों से ही नष्ट होती है (क्योंकि) यह चक्कर लाने के कारण शरीर को एक विचित्र कक्ष से पीड़ित करती है मन को जरास्त करती और दृष्टि को घुमा देती है (अर्थात् उल्टी कर देती है) ॥८८॥

जात्यधाय च दुर्मुखाय च जराबीर्गातिसाहाय्ये च
 प्रानीगाय च दुष्कृताय च गन्तुष्टाभिभूताय च ।
 पञ्चदन्वीपु मनोहरं निजवपुलक्ष्मीसद्वयया
 पण्यस्त्रीपृथिविकं पण्यसतिपाशस्त्रीपु रज्यत कं ॥८९॥

वैराग्यशतकम्

संपत्ताचरत्तम्

दिक्कासासनवच्छिन्नाजन्तविन्मानमूर्तये ।
स्वानुभूत्येकस्मानाय नमः शान्ताय तेजसे ॥१॥

देह-आस से अवरिसीमित, अनन्त, ज्ञानस्वरूप, अरती (आन्तरिक)
अनुभूति से ही बोधगम्य, शान्त तथा तेजस्वरूप(ब्रह्म)को प्रणाम है ॥१॥

योद्धारो मत्स्ररप्रस्ता प्रभव स्मयद्रूपिता ।
प्रबोधोपहृताश्रान्ये जीर्णमङ्गे सुभाषितम् ॥२॥

येसु काम्य शरीर में (ही) मूल जाता है (भ्रूयैकि) बुद्धिमान लोग
तो गर्व से मरे हैं, येश्वर्यशाली लोग धन के परम में पूर है तथा दूसरे
जन अज्ञान से प्रसूत हैं ॥२॥

नसंसारोत्पन्नं चरित्तमनुपस्यामि कृशलं
विपाकं पुष्पानां जनयति मयं मे विमृशत ।
महद्भिः पुष्पोपरिवरपरिगृहीतारुचं विपया
महान्तो जायन्ते असनमिब दातु विपयिणाम् ॥३॥

सेवा भी बिफल हो गई, (बीर) मान-भर्यादा छोड़कर, राकित होकर दूसरों के घर कौबे की तरह भोजन भी किया (पर सब व्यय ही रहा) ॥१५॥

सप्तोत्सापा सोढा कथमपि सदारोचन परे-

निर्गृह्यान्तर्वाप्यं हसितमतिशून्येन मनसा ।

श्रुतश्चित्तस्तम्म प्रहसितधियामञ्जलिरपि

स्वमाद्ये मोघाद्ये विमपरमतो नर्त्तयसि माम् ॥१६॥

हे भाये ! व्यय मुझे अब क्यों नवाती है ? (क्योंकि तेरी ही वृत्ति के लिए) मैंने दुर्जनों की सेवा में तत्पर होने के कारण (उनके घनेक) दुर्बलन करने-देते सहे; अन्ध के आँसुओं को रोकर उन्मत्त(उमके जाने) हँसते भी रहे (तथा) मजाक उढ़ाने वाजों के सामने दिन बाम कर हाय भी जोड़े (पर सब निरर्थक ही हुआ) ॥१६॥

आदित्यस्य गतागर्तरहरह संक्षीयत जीवितं ।

व्यापारैवहुकार्यमारगुर्धम कासो न विनायते ।

दृष्ट्वा जमजराविपत्तिमरणं प्राप्तश्च नोत्पद्यते ।

पोत्या मोहमयीं प्रमादमदिरामु मत्तभूतं जगत् ॥१७॥

अज्ञान से मरी आलस्य की मदिरा पीकर यह संसार पागल ही रहा है । (क्योंकि) सूरज के निरमने और अन्ध होने से दिन पर दिन उमर प्यती (ही) जाती है अत्यधिक काय मार से बोझिल व्यापारों में व्यस्त रहने व कारण समय का (भी) पता नहीं चलता, बीर जन्म सुझपा गुपीरते तथा मृत्यु दगकर (भी) भय नहीं लगता ॥१७॥

दीना दीनमुग सन्नेव शिगुरराष्ट्रार्जुणाम्बरा

प्रनेरिद्धि धुपितमरेनं विधुरा दस्येव चद्गेहिनी ।

याञ्चामङ्गलभयेन गद्गदलसत्त्रुटपट्टिनीनाक्षरं
को देहीति यदेस्त्वदग्धजठरस्थार्धं मनस्वीजन ॥८॥

कौन ऐसा मनस्वी पुरुष होगा जो कवल अपना पेट भरने के लिए मीस न मिलने के डर से, गद्गद बच्चनों से दूरे-कूटे बसतों वाली (मीस) 'दो' ऐसी बाखी कहेगा (पर्यन्त मीस मंगिगा) अगर (उसके पास ऐसी) फली न हो जिसके फटे-पुराने कपड़ों को अत्यन्त बिन मुँह वाले बच्चे खींच रहे हों और जो अप्र के लिए रोते हुए पर के दूसरे सदस्यों (को देखने) से पीड़ित हो ॥८॥

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुष्यवहृमानो विगसित
समाना स्वयन्ति सपदि मुहुदो जीवितसमा ।
शून्यं द्योत्यानं घनतिमिररुद्धे च नमने
महो घृष्ट मामस्तदपि मरणापाम्बुविश ॥९॥

अरे ! यह शरीर (इतना) हीठ है कि तब भी मृग्यु भी बात गुनकर चरित हो उठता है (जब) भोग-विलास की क्रममा हीस हो गई अपनी ठमर वाले स्वयं जैसे गए, अन्य मित्रजन भी मरणासप्त हैं (म्यं भी) छड़ी के छहारे पीरे-पीरे उठ पाते हैं और दोनों माँघां में (मी) कन्धेरा टा गया है ॥९॥

हिंसानू यममत्नसम्यमशन धात्रामरुकल्पित
व्यासानां पशवस्त्रुणांकुरभुजं सृष्टा स्पतीशामिन ।
ससाराणवलघनममघिया वृत्ति सृष्टा सा मृष्टा
यामन्वेपयतां प्रयाति सतत सर्वे समाप्ति गुणा ॥१०॥

साँपों के लिए विषाता ने (ऐसी) जीविका बनाई कि वे बिना हिंसा और परिश्रम के भोजन पा जाय; ऐसे जानवरों का निर्माण किया (जो)

तनय चाते और जमीन पर सोते हैं (परन्तु) संसार-सागर को पार करने में समर्थ बुद्धि वाले मनुष्यों की प्रवृत्ति ऐसी बनाई कि सब पुण्यों के समाप्त हो जाने पर (भी) जिउ पीउ की तजारा (बे करे) उसमें निरस्तर विफ़ल ही हों ॥१०॥

न ध्यात पदमीश्वरस्य विभिवत्ससारविच्छिद्यतये
स्वगद्धारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि _ नोपाजित ।
नारीपीनपयोधरोरुयुगल स्वप्नेऽपि नासिङ्गित
मातु केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम् ॥११॥

हम माँ के यौवनरूपी बन काटने के लिए कुत्हाड़ी ही हैं । (क्योंकि) भगवान के चरणों का संसार से मुक्ति पाने के लिए (हमने) यथाविधि ध्यान नहीं किया ऐसे धम का भी उपाजन नहीं किया जो स्वर्ग के बरवाते की सोच सके और न ही स्त्री के पुट उठेनाँ और दोनों जाँघों का स्वपन्न में (भी) आसिङ्गित किया ॥११॥

भोगा न मुक्ता वयमेव मुक्तास्तपो न तप्त वयमेव तप्ता ।
कालो न मातो वयमेव यातामृष्या न जीर्णा वयमेव जीर्णा ॥१२॥

हमने विषय-वासनाओं का भोग नहीं किया (अपितु) खुद ही उनके भोग्य बन गये तपस्त्रा नहीं की स्वयं जजते रहे समय नहीं बीता हमी समाप्त हो गये तथा नहीं जार्म हुई हमों बड़े हो गए ॥१२॥

दान्त न धमया गृहोचितमुज त्यक्त न सद्योपत
सोत्रा दुःसहघातवातनपना क्लेशान्न तप्त तप ।
ध्यात्र गितमहनिश नियमितप्रागेन शम्नो पद
तत्तन्मम कृत पदव मुनिनिस्तम्त फलवधितम् ॥१३॥

हमने वही-वही काम किया जिसे-जिसे मुनियों ने प्रवक्षक कहा ।
 (क्योंकि) हमने क्षमा का पालन ही किया पर सामर्थ्य के बल पर नहीं
 (वरन्। अपनी कमचोरी के कारण) घर का सुत ही छोड़ा पर संतोष
 की भावना से नहीं ठण्ठी और गरम हवाओं के असह्य कष्ट को ही
 सहा पर तपस्या नहीं की, वैभव पर दिन रात ध्यान लगाये रहे पर
 नियमपूर्वक शङ्कर जी के चरण का ध्यान नहीं किया ॥१३॥

यसिभिर्मुखमाक्रान्त पश्चितरन्ति शिर ।

गात्राणि शिथिलायन्ते वृष्णीका तस्यामते ॥१४॥

बस एक सालच ही जवानहो रही है । भूर्भर्योंसे भूँहआक्रान्त हो गया
 शिर सफेद घालों से पिङ्गित हो गया । (और) अङ्ग भी ढीले पड़ गये ॥१४॥

येनैवाम्बरस्रष्टेन सवीतो निशि चन्द्रमा ।

तेनैव च दिवा भानुरहो दौर्गत्यमेतयो ॥१५॥

अरे ! यह इम दोनों (चन्द्रमा और सूर्य) की दुर्दशा ही तो है ! (बेतो न)
 प्राकाश के जिस माग में चन्द्रमा रात बिताता है उसी में सूर्य दिन बिताता
 है ॥१५॥

श्वशर्यं यातारश्चरतरमुदित्वापि विपया

वियोगे को भेदस्त्यजति न जनो यत्स्वयममूत्र ।

प्रजन्त स्यातन्व्यादनुसपरितापाय मनस

स्वय त्यक्ता ह्येते यममुखमनन्तं विदधति ॥१६॥

विषय-वासनाएं बहुत समय तप भोग सने पर भी निश्चित रूप से
 पूरा जायगी । (इसलिए) प्रादमी अपने आप ही उनका त्याग क्यों न कर दे ?
 (क्योंकि) जब वे (बामनाएं) स्वयं हूट जायगी तो चित्त को अति दुःख
 देगी । (और यदि उन्हें मनुष्य) उन्हें स्वयं तिलाञ्जलि दे दे तो यह अमन्त
 मूत्र प्राप्त करेगा ॥१६॥

स्तृप्याधिकारमाह

विवेकव्याकोशे विदधति शमे शाम्यति तृपा
परिर्व्वगं तुङ्गे प्रसरत्तितरां सा परिष्णति ।

जराजीर्णेश्वयग्रसनगहनाक्षेपकृपण-

स्तृपापात्रे यस्यां भवति मस्तामप्यधिपति ॥१७॥

विवेक के प्रकाशित होने पर तृप्या शान्त हो जाती है वही (तृप्या) दे बिनासों के संसर्ग से फलकर चरम सीमा पर पहुँच जाती है। (क्योंकि) तृपा भी ऐसी तृप्या के वशीभूत होकर उन्नत नर भोगे हुए वैभव के स्थिति परित्याग में असमर्थ हो जाता है ॥१७॥

मदनपिडम्बनमाह

कृत्वा बाणं लब्धं श्ववगरहितं पुच्छविकसो

व्रणीं पूयक्सिन्नं कृमिकुसदातरावृततनुं ।

क्षुधाभामो जीणं पिठरजकपालापितगस

शुनीमन्येति या हृतमपि च हृत्येव मदन ॥१८॥

कामदेव मरे हुए को भी मारता है। (क्योंकि) कृत्रिया श्व (संभोग करने के लिए) पीछा करता वह कृत्वा (भी) ऐसा करता है (जो) दुर्बल, बाला, लंगड़ा बन्धुता पूछरहित है; जिनके फोडा हो गया है; जिसके मवाद मरे शरीर में कीड़े पड़े हैं, जो भूला और बूड़ा हो गया है (और) जिसके गत में फूरी हुई हाँडी का घेरा पड़ा है ॥१८॥

विषयाणामधिकारमाह

भिन्नाग्नौ सदपि नीरसमेकत्वारं

शय्या च नू परिजनो निजदेहमाश्रम् ।

वस्त्र घ जीणशतखण्डमलीननन्या

हा हा तथापि विषया न परित्यजन्ति ॥१६॥

बड़ा आश्चर्य है कि बासनाए सब भी उन्हें नहीं छोड़तीं (जो) भीस माँगकर खाते हैं वह भी बिना स्वाद का भोजन केवल (विम में) एकबाट (जिनकी) शय्या घूमिबी (और) परिवार अपना शरीर मात्र है; (तथा जिनका) कमड़ा सफ़ाई पीपड़ों बाज़ी क्यरी है ॥१६॥

अपतिरस्कारमाह

स्तनो मांसग्रथी बनककसघावित्युपमितो

मुखं श्लेष्मागारं सदपि घ दशान्केन तुम्भितम् ।

अवन्मूत्रनिसन्न करिवरकरस्पधि अपन-

महो निन्द्यं रूपं कधिजनविदोर्षगुंघ कृतम् ॥२०॥

धरे ! (स्त्रियों के) निन्दनीय सौन्दर्य भी कवियों ने बड़ी ही (असंगत) प्रशंसा कर रमी है । (क्योंकि) मांस के लोयड़ों कास उरोजों की उपमा (कवियों ने) सोने के फलरा से की है पूक से भरे मुह की भी तुलना चन्द्रमा से की है (तथा) टपकते हुए सूत्र से भीगी जाँघों को वे गजपत्र के गुण्ड के सदृश बताते हैं ॥२०॥

अज्ञानमाहात्म्य पततु दालभो दीपदहने

स मीनोप्यशानाद्दृष्टिसयुतमदनातु पिशितम् ।

विजानन्तोऽप्यते धयमिह विपज्जासजटिसा

घ्र मुञ्चाम कामानहह गहनो मोहमहिमा ॥२१॥

धरे ! यह महा अज्ञान की अत्यन्त गूढ़ महिमा है कि पठंग दीपक की भाग में बनवाने में गिरता है (अर्थात् यह यह नहीं जानता कि उसमें

मर प्रायणा), मछली भी कटिया का मांस बनजाने में ही खा लेती है (परन्तु) हम (मनुष्य जाति) ही ऐसे हैं कि जानते हुए भी दुग्ध की जास में फंसाने वाली वासनाओं को नहीं छोड़ते ॥२१॥

विसमसमरानाय स्वादु पानाय तोय
 श्यनमवनिपृष्ठे वल्कले वाससी च ।
 मवधनमधुपानम्रान्त सर्वेन्द्रियाणा-
 मविनयमनुमन्तुं नोत्सहे दुर्जनानाम् ॥२२॥

मैं ऐसे दुष्टजनों का घनादर नहीं सह सकता जिनकी सभी इन्द्रियाँ नयी सम्पत्ति स्वी मदिश पीने से चकराती रहती हैं, जब कि साने के लिए कमसकन्द पीने के लिए स्वादिष्ट जल सोने के लिए पृथिवी तथा पहने के लिए बल्कल (प्राप्य हैं) ॥२२॥

मानितापुष्टिभ्याह

विपुलद्वयर्षेण्य कश्चिज्जगज्जनितं पुरा
 विधृतमपरैदत्त धान्यैर्विजित्य तृण यथा ।
 इह हि भुवनान्यन्ये धीराश्चतुदश भुञ्जते
 कतिपयपुरस्वाम्यं पुसां क एष मदज्वर ॥२३॥

बृहत् ऐसे विराग्य हृदय वाले महान् पुरुष प्राचीन काल में हुए जिन्होंने संसार की सृष्टि की। दूसरों में (जिस संसार को) स्थिर रक्ता। (बृहत्) अथ सोमां में (संसार को) जीतकर सितके की तरह (दूसरों को) दे दिया। यहाँ (बृहत् ऐश भी) धर्मवान् पुरुष है जो चौदहों सुबनों का, पासन करते हैं। (और दूसर) के मनुष्य जिनको बृहत् माँब पाने का अभिमान स्वी ज्वार है, क्या है ॥२३॥

साहङ्कारं पुरुषमुद्दिश्याह

स जात भोप्यासीन्मदनरिपृणा मूर्ध्नि धवलं
 कपालं यस्योच्चैर्विनिहितमसंकारविषये ।
 नृमि प्राणप्राणप्रवणमतिभि फैरिचदधुना
 नमस्मिन् क पुंसामयमतुल्लदर्पज्वर मर ॥२९॥

पेक्षा भी कमी कोई (पंदा हुआ) था जिसके उज्ज्वल मस्तक को मगवान् शङ्कर ने अपने सिर पर आभूषण बनाया ? आजकल कुछ ऐसे मनुष्य हैं जो जीवन-यापन करने वाले कुछ व्यक्तियों से आदर पाकर न जाने कितने अतुल्य अहङ्कार के ज्वर से उन्मत्त हो रहे हैं ॥२९॥

अर्थानामोशिषे त्वं वयमपि च गिरामीशमहे यावावितयं
 दूरस्त्वं वादिदर्पज्वरशमनविधावक्षयं पाटवं न ।
 सेवन्ते त्वां घनाश्रया मतिमसहृतये मामपि द्योतुकामा
 मय्यप्यास्था न चेत्तत्त्वयि मम सुतरामेपरत्नन्गतोऽस्मि ॥३०॥

हे राजन् ! यदि मुझमें तुम्हारी भासा नहीं है तो मेरी भी तुममें नहीं । (अतः) मैं जाता हूँ (क्योंकि) यदि तुम ऐश्वर्य के स्वामी हो तो मैं भी बिना का स्वामी हूँ, यदि तुम (पुष्ट में) वीर हो तो मैं भी (शास्त्रार्थ करने वाले) प्रतिद्वन्द्वियों का ज्वर शान्त करने में दया हूँ, यदि तुम्हारी सेवा धन के लोभी करते हैं तो बुद्धि की मसिगता दूर करने के लिए (शास्त्र) सुनने की इच्छा रखने वाल भोग मेरी भी सेवा करते हैं ॥३०॥

यदा त्रिविज्जोऽह द्विप द्वय मदान्य समभयं
 तदा सर्वशोऽस्मीश्यभवदवसित मम मन ।

यदाकिंनिस्त्रिचिद्बुधजनसकाशादवगतं

तदासूक्तोऽस्मीति ज्वर मदो मे व्यपगत ॥३१॥

मुझे जब बहुत थोड़ा ज्ञान था तो मैं हाथी की तरह अमिमान में
बन्धा हो गया। उस समय मेरा मन अपने को सब जगत् कर गर्व से
से भर गया। जब मुझे विद्वानों के संसर्ग से कुछ जानकारी हुई तो (यह
जानकर कि) मैं मूर्ख हूँ मेरा ज्वर-सा घमण्ड उतर गया ॥३१॥

निममतास्वप्नमाह

प्रतिप्रान्तं कालो लटमसतनामोगसुभगो

भ्रमन्तं प्रान्ता स्म सुचिरमिह संसारसरणो ।

इदानीं स्वसिन्धोस्तटभुवि समाश्रन्दनगिरि

मुतारे फरकारे ; शिवनिवशिवेति प्रतनुम ॥३२॥

ममय (जवानी) बूढ़ों से सुशोभित स्त्री के साथ विनास (करने) में
शरित गया। बहुत समय तक इस मसारा-पथ में भ्रमण करते-करते पक
गया है। (इत) इस समय स्वगङ्गा के तीर पर (सिंधों के प्रति) निन्दा के
वर्षनों के सोर-शोर से बहकर शब्दर धी धी शरिर नृरि उपासना
प्राप्त ॥३२॥

माने म्साविति गण्डित घ वमुनि व्यर्षप्रयात्प्रपिर्ना

धीजे यधुजने गते परिजने मष्टे शनैर्वीयन ।

मुस्तं फयसमेतदेव मुधिया यद्वद्गु कन्यास्य -

पूनप्रावगिरीन्द्रपन्दरदरीगुञ्जे निवाय क्यचित् ॥३३॥

बुद्धिमान् पुरुषों के लिए इस समय यही उचित है कि उस पर्वत की कन्दरा के समीप गुफा और कुछ में कहीं निवास करें जिसके पर्यर यज्ञा-जल से पवित्र हैं (क्योंकि) आदर कम हो गया धन नष्ट हो गया माधना करने वाले सौट-सौट जाते हैं, सम्बन्ध जन भी कम हो गये तथा भीरे भीरे अवानी भी विनष्ट हो गई ॥३३॥

परेषां घेतासि प्रतिदिवसमाराध्य बहु हा
 प्रसादं कि नेतु विशसि हृदय म्लेघनसितम् ।
 प्रसन्ने स्वम्यन्त स्वममुधितचिन्तामणिगुणे
 विमुक्तं संकल्पं किन्मभिलषित पुप्यति न वे ॥३४॥

हे मन ! तू प्रतिदिन दूसरों के हृदय की अत्यधिक आराधना करके किस सुख को प्राप्त करने के लिए बप्ट भोग रहा है । तू सभी कामनाओं का परिष्याग करके अपनी इच्छा पूरी क्यों नहीं करता ? (क्योंकि) तेरे आन्तरिक रूप से प्रसन्न रहने पर चिन्तामणि जैसे गुण स्वयं प्रफुल्लित होते ॥३४॥

अथ भोगपद्धतिः

भोगे रोगभयं कुले श्मृतिभयं वित्ते नृपालाङ्गयम्
 मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे अराया भयम् ।
 शास्त्रे वादभयं गुणे एतभयं वाये श्रुतान्ताद्भय
 सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥३५॥

पृथिवी पर मनुष्यों के लिए सभी चीजें भयप्रद हैं, कबल वैराग्य ही निर्भय है । (क्योंकि) भोग-विनाश में रोग का, परिवार (के बहुत बड़े हैं जाने) से पतन का, सम्पत्ति होने पर राजा का मौन रहने पर दीनता का

पपत्रम् रहने पर शत्रु का सौन्दर्य के रहने पर बुझाये का ज्ञान रहने पर प्रतिवादियों का सद्गुणों के रहने पर दुष्टों का तथा शरीर में यमराज का भय बना रहता है ॥३५॥

अमीषां प्राणानां तुलितधिसिनीपत्रपयसां
 वृत्ते निशास्माभिर्विगसितविवेकैर्ब्यवसितम् ।
 यदाश्रानामग्रे द्रविणमदनि शंक्मनसां
 वृत्तं वीतश्रीर्हैनिजगुणकथापातमपि ॥३६॥

हमने बमस-पत्र पर विन्दुआ के सदरा (चञ्चल) इन प्राणों के लिए विवेक का परित्याग करके क्या-क्या नहीं किया ? (क्योंकि) देवर्ष्य के मद से बन्धे भोगों के सामने अपना गुणगान रूपी पाप तो निर्वञ्चतापूर्वक किया ही ॥३६॥

अथ कासमहिमा

आत बटमहो महान्स नृपति सामन्तश्चक्र च सत्
 पार्श्वे तस्य च सापि राजपरिपत्ताश्चन्द्रविम्बानना ।
 उद्रिक्त स च राजपुत्रनिवहस्ते चन्दिनस्ता कया
 सर्वं यस्य यथादगात्स्मृतिपद बालाय तस्मै नम ॥३७॥

हे माई ! उस बाल को नमस्कार है जिसके बघीसूठ होकर सभी पीजें कहानी मात्र रह गयीं । (क्योंकि) यह बड़े सेद की बात है कि वह महान् राजा जिसका राज्य चारों ओर फैला हुआ था, उसकी राज-सभा तथा (उस दरबार में) मूखोमित्त होने वाली तियाँ, उससे सबल राज-पुत्र तथा बन्दीगण—यह सभी (उस बाल के बरा में रहने के कारण) बिनष्ट हो गए ॥३७॥

वय येन्यो जातादिघरपरगता एव खलु ते
 सम ये सवृद्धा स्मृतिविषयतां सेऽपि गमिता ।
 इदानीमे ते स्म प्रतिदिवसमासन्नपतनाद्-
 गतास्तुस्यावस्थां सिवतिलनदीतीरसरभि ॥३८॥

इस समय हम दिन पर दिन, मदी के तट पर बाधू में (उगे) पेड़ की तरह पतन की ओर जा रहे हैं (क्योंकि) दिनके साथ हमारा जन्म हुआ था वे बहुत पहले ही (मृत्यु के घाट) चले गए और जिसके साथ हम बने हुए वे भी जहानी मात्र रह गए ॥३८॥

यत्रानेके क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यपेनो
 यथाप्येवस्तदनु बहवस्तत्र शान्ते न चेक ।
 इत्य धेनौ रजनिदिवसौ दोसपन्दाविवागौ
 फाल वात्या सद् बहुबस श्रोठति प्राणसार ॥३९॥

काल पुर्य आदमिया की गोपी बना-बना पर दिन-रात के पासों की फेंककर अपनी कालघात्रि से सेलता है । (क्योंकि) उस घर में जहाँ बहुत शोक थे बेशक एक ही रह गया है । जहाँ एक वा और बाव में बहुत सारे (दीप पड़े) ये वहाँ अन्त में एक भी नहीं रह गयो ॥३९॥

तपस्यन्त सन्त किमधिनिवसाम भुरनदी
 गुणोद्वन्द्वारान्नुत् परिष्वराम सदिनयम् ।
 पियाम शास्त्रीधान्नुत् विविधनाश्यामृतरसा-
 न विद्य वि भुम प्रतिपयनिनेपामुपिजते ॥४०॥

इस दोष मंगुर मनुष्य (शरीर) की रोगकर हमें बह नहीं मालूम कि क्या करे । (क्योंकि) हम इसी उहापोह में हैं कि) तपस्या करते हुए गन्नाजी

के तीर पर निवास करें, या गुरुवती कामिनिया के साम प्रणयपूर्वक
बिहार करें, अथवा शास्त्रों तथा वाक्या के रसामृत का पान करें ॥४०॥

गङ्गातीरे हिमगिरिशिलावदपद्यासनस्य

ब्रह्मध्यानाभ्यसनविधिना योगनिद्रां गतस्य ।

नि संभाव्य मम सुदिवसेयत्र ते निर्विशका

सप्राप्स्यन्ते अरठहरिणा शृङ्गकद्विनोदम् ॥४१॥

मेरे ऐसे अच्छे दिन कब होंगे जब हम गङ्गातीरे के तट पर हिमालय
की चट्टान पर पद्यासन लगावेंगे, ब्रह्म के ध्यान में विधिपूर्वक सौन हो
योगनिद्रा प्राप्त करेंगे तथा (मुझ से) निर्मम होकर बड़े मुण (हमारे घरीय
से राग कर) अपने सींग की सुकली मित्रवत् ॥४१॥

स्फुरस्फुरज्योस्स्नायवसिततले क्वापि पृथिने

सुखासीना शान्तव्वनिपु रजनीपु सुसरित ।

भवामोगोद्विना शिवशिवशिवेत्यातवचसा

पदा स्यामानन्दोद्गतबहुलवाप्यप्सुतट्टा ॥४२॥

हम ऐसे (सुखी) कर होंगे जब वहाँ किसी हुई चाँदनी से झुल्ल हुए
गङ्गातट पर ध्यानसे बैठेंगे; सब आवाज बन्द हो जाने पर रात में शब्द
की की मुरि मुरि पूजा आत्मस्वर से करते हुए आँसुवत् कर्णों से
ध्यावत् रहेंगे, (तथा जब) गुरी के आँसुओं से आँखें मरी रहेंगी ॥४२॥

महादेवो देव सरित्पि च सेषा मुरसरि-

दगृहा एवागार वसनमपि वा एव हरित ।

सृष्ट्वा वासोऽथ वनमिदमदैन्य व्रतमिदं

पितृदा बभ्यामो वटवित्प एवास्तु दयिता ॥४३॥

क्या-क्या कहें ? शिव ही एक देवता हों (अन्य नहीं उसी प्रकार)
गङ्गा ही एक नदी शुष्क ही एक पद, दिखाए ही परिधान, समय ही मित,
अदीनता ही प्रथ तथा बट-वृक्ष की तरह ही (हमारी) पत्नी हो ॥६३॥

शिरः शार्यं स्वर्गात्पद्मपतिशिरस्तः क्षितिघर
महीघ्रादुत्तुगादवनिमवनेश्चापि जसधिम् ।
अधो गङ्गा सेय पदमुपगता स्तोत्रन्मथवा
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः ॥४४॥

विवेक-पथ से विचलित लोगों का पतन सबहों तरह से होता है ।
(क्योंकि) गङ्गाजी स्वर्ग से शङ्कर जी के शिर पर गिरीं, शिर से हिमालय
पद, (उस) ऊँचे पर्वत से पृथिवी पर (तथा) पृथिवी से सागर में जा
गिरीं ॥४४॥

आशा नाम नदी मनोरथजसा तृष्णातरङ्गामुसा
रागप्राहवती वित्तवविहगा धर्मद्रुमप्यसिनो ।
मोहावर्त्तसिद्धुस्तराप्रनिगहना प्रोत्तुङ्गचिन्ताहसटी
तस्याः पारगता यिशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वरा ॥४५॥

आशा (उम्मीद) नाम की एक नदी है । (उसमें) कामना स्त्री जल
है, तृष्णा रूपी तरंगें हैं, अनुग्रह रूपी मगर है, अनेक प्रकार के तब
वितर्क ही पत्तों हैं । (यही आशा रूपी नदी) धर्म रूपी वृत्तों का विध्वंस
करने वाली है । (उसमें) अज्ञानरूपी मवरों के कारण अत्यन्त दुस्तर
तथा विचट चिन्तारूपी छट हैं । इसी को पार करने पवित्र मन वाले
योगीश्वर ही आनन्द प्राप्त करते हैं ॥४५॥

प्राससार त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात साहद्
 नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोत्रवत्सर्गतो वा ।
 योज्यं घसो विषयकरिणो गण्डगूढामिमान-
 क्षीयस्यान्तःकरणपरिणं सयमासानलोत्तमाम् ॥४६॥

हे भाई ! सारे संसार में दसा पुण्य न दखने में प्राया घोर न मुनने में जो विषय-वासनाओं स्पी हृदिनी सं सपन्न प्रहंकार से मुक्त मन्त करण स्पी मठवाने हापी को बनने वरा में रख सके ॥४६॥

साम्प्रत निर्वेदताया स्वस्वमाह

ये वदन्ते धनपतिपुरं प्रार्थनादुःखमाजो
 ये धान्यत्व दयति विषयान्नेपपर्यस्तमुद्वे ।
 तेषामन्त स्फुरितहसितं वासराणां स्मरेय
 ध्यानाभ्येदे शिवरि कुहुरश्रावणम्यानिपण्ण ॥४७॥

हम उन दिवसों को बन्धमन में प्रवृत्ति होकर ध्यान लगाने से शान्ति पाकर, पत्रत की मुक्ता में शिवास्पी ध्याना पर बैठे हुए या करी पा (दिवस) ऐश्वर्यशाली व्यक्तियों से वाचना करने के कारण दुःख सहन करने बानों के लिए बड़ पात है; (घोर) जो (उनके लिए) घट पाते हैं दिनकी बुद्धि भोग-विनाश के कारण उल्टी हा गई है ॥४७॥

विद्या नाधिगता बन्धरहिता वित्तं च नोपाजितं
 दुःखपापि समाहितेन मनसा विशोर्न सम्पादिता ।
 प्रासोलायतसोचना युयतय स्वप्नेऽपि नासिद्धिता
 शालोऽप्य परिपरिहसानुपतया कारिष्य त्रेनि

दूसरों के प्राप्त की मालसा। करते-करते श्रीए की तरह हमारा सारा य यों ही बीत गया। (क्योंकि) हमने न तो निर्मल विद्या प्राप्त की यन पैदा किया, न ध्यान पूर्वक माँ-बाप की ही सेवा सुझूपा की (बीर) जपल तथा दीर्घ नेत्रों वाली युवतियों से स्वप्न में भी प्रसिद्धन ही गया ॥४५॥

वितीर्थो सर्वस्वैः तर्क्यप्रख्यापूर्णहृदया
स्मरन्त ससारे विगुणपरिणामावधिगती ।
वय पुण्यारण्ये परित्यक्तशरच्चन्द्रविरण्यै-
स्त्रियामां नेप्यामो हरचरणचिह्नं कशरण्या ॥४६॥

हम शङ्कर जी के चरणों में अपना ध्यान लगाकर, शब्द श्रुति की ज्योत्स्ना में किसी पवित्र वन में बैठे हुए ऐसी रात कब बिताएंगे जब सभी क्रुद्ध नष्ट हो जाने पर मेरा हृदय कल्याण से भरा होगा और उन (नष्ट हुए) बीतों को हम गुणविहीन (नरवर) मान सकेंगे ॥४६॥

वयमिह परितुष्टा वल्कलेस्त्वत्त्व सङ्गम्या
सम इह परिमोषो निबिधोपावशय ।
स तु भवति दरिद्रो यस्य सृष्ट्या विशाला
मनसि च परितुष्टे षोऽपवान्को दरिद्र ॥४७॥

दरिद्र वह होता है जिसकी साझसाए बहुत क्षयित होती है। मन के संतुष्ट रहने पर कौन दरिद्र है और कौन गनाह्य? (क्याकि) तुम (यदि) देशवर्ष से संतुष्ट हो तो मैं बलाल स हूँ। (प्रतः) इस विषय में (हमारे और तुम्हारे) सन्तोष में कोई अन्तर नहीं है ॥४७॥

यदेतत्स्वेच्छन्द विहरणमवापैत्यमुत्तम - -

सदायं सुवास - १ श्रुतमुत्तममैकव्रतफलम् ।

- मनो मन्दस्पन्दं बहिरपि-विरस्युपि विमृश-

- न्न जाने कन्येषा परिणतिश्चदारस्य तपस ॥ -

स्वच्छन्द हाकर विहार करना। बिना मगि भावन करना मवद करते बासों के साथ निवास करना, ऐसा प्राय सुनता जिसका फल शान्तिरूपी साधना हो बाहरी (मौखिक) चीजों में लग हुए मन से भी बहुत समय तक विचार मन् रहना—में यह नहीं जानता कि यह सब किस तपस्या के फल है ॥११॥

पाणि पात्र पत्रिन् भ्रमणपरिगतं नैवमक्षय्यमन्नं
विस्तीर्णं वस्त्रमोद्यानुदशकममन तल्पमस्वल्पमुर्वी ।

- यथा नि सगतांगीकरणपरिगति स्वतनसन्तोषिण्ये

- धया सजन्तुदैन्यव्यतिरनिपरा कर्म निर्मूलयन्ति ॥१२॥

वे लोग मग्य हैं जिनकी बन्धरायना में संताप है, जिनका हाथ (ही) पवित्र पात्र है, धूम-धूम कर भोज में पाया हुआ अन्न ही भोजन है जिसमें बापा निरन्न-आसारा ही परिधान है (तथा) घोड़ी की खमीन ही शय्या है जिन्होंने फल के बिषय में अनाच्छ रहना स्वीकार कर लिया है, या सारी चीनता छोड़ चुके हैं (तथा) जिन्होंने कम (की पति) को समूच मष्ट कर दिया है ॥१२॥

दुरारारव्य स्वानो तुग्गचलन्विता शित्तिनुजो

वय तु स्यसेच्छा महति च पद यदमनस ।

जरा देह मृत्युर्हृति सकल जीवितमिद

सखे नान्यच्छेयो जगति विदुषोऽन्यत्र तपस ॥५३॥

हे मित्र ! ज्ञानी व्यक्ति के लिए तपस्या छोड़कर कहीं और कल्याण नहीं । (क्योंकि) स्वामियों की सेवा अति अठिन है; राजाओं का मन घोड़ों की घास की तरह अज्ञान होता है । (फिर) हम तो स्मृत (पदार्थों) की कामना करते हैं ! हमारा मन बड़े-बड़े पदों में भगा है । शरीर भी बूढ़ हो चुका है । (और) सारे जीवन का तो मौत अन्त (ही) कर देती है ॥५३॥

मोगा मेघवितानमभ्यविससत्सोदामिनीचशसा

प्रायुर्षायुविधट्टिताघ्रपटसीसीनाम्बुवमूर्ध्नु रम् ।

सोसा यौवनलासना तद्भृत्तामित्याकसम्यद्भुतं

योगे धर्म समाधिसिद्धिसुत्तमे बुद्धि विषय बुधा ॥५४॥

हे परिश्रमो ! धर्म की समाधि लगाने से सुकृत मोग में (ही) ध्यान रखो (क्योंकि) विषय-बासनाएं फले हुए बादलों में समझती हुई बिजली की तरह अज्ञान हैं; उन्न (भी) हवा से निचरे हुए बादलों के पानी की तरह मरवर है; (तथा) ज्वानी की उमरों भी अस्थिर हैं ॥५४॥

पुण्ये ग्रामे वन वा महति सितपटच्छन्नपार्श्वी क्माली-

मादाय न्यायगमद्विजमुत्तुतमुग्भूमधूमोप क्मठम् ।

द्वारद्वारं प्रयुतो धरमुदरदरीपूरणाय शुधातो

मानी प्राणी सधन्योनपुनरनुदित तुल्यवृत्त्येपुदीन ॥५५॥

अपने बराबर के परिवार वालों में दीन हाजर रहना अच्छा नहीं, (बल्कि) वह मानी पुरय अच्छा जो पवित्र भाव या जंगल में भ्रम से

पीड़ित पेट स्त्री सोह मरने के लिए ऐसे द्वारों पर जाता है जिसकी चौखट न्यायशील ब्राह्मणों के द्वारा किए गए हुवन की शक्ति के धुरें से मरी हुई है ॥१५५॥

घाण्डाल किमय द्विजातिरथवा दूद्रोथ कि तापस
 किंवा तस्वनिवेशपेशसमतियोगीश्वर कोप्रपि किम् ।
 इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः सम्भाष्यमाणाजर्न-
 मंशुद्धा पयि नैव तुष्टमनसो यान्तिस्वय योगिन ॥१५६॥

योगीजम स्वच्छन्द अपने रास्ते पर चले जाते हैं । वे ऐसे लोगों से राम द्वेष नहीं करते जो सन्देह में पड़े होने के कारण यह निन्द्य नहीं कर पाते कि यह ब्राह्मण है या ब्राह्मण शूद्र है या कोई तपस्वी भयवा कोई ऐसा योगी है जिसकी बुद्धि तत्त्व-चिन्तन में निपुण है ॥१५६॥

सते धया केचित्प्रुटित्तभवन्न्यव्यतिवरा
 वनान्ते चित्तान्तर्विषमविषयाशीविषगता ।
 शरच्चन्द्रज्योत्स्नाधवसगगनाभोगमुभगां
 नयन्ते ये रात्रि मृशृत्तत्रयधित्तत्रारणा ॥१५७॥

हे मित्र ! वे लोग धन्य हैं जिसके मन में मत्तमों की रात्रि है, जिन्होंने सांसारिक मन्यनों को छोड़ डाला है, जिनके मन से भयंकर सर्प स्त्री भोग-विस्तार निवृत्त गया है (तथा) जिनकी रात्रि शरद् शत्रु की चांदनी से शुभ एवं भानारा के विस्तार से गमनीय होती है ॥१५७॥